तथागत

नाटक

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

बेनीपुरी-प्रकाशन
पटना : मुजफ्फरपुर

बेनीपुरी-प्रकाशन
पटना : मुजफ्फरपुर
के लिए
पुस्तक-जगत, पटना
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण
दीपावली : १९४८
मूल्य—२)

मुद्रक :
श्री रामेश्वरसिंह
ओरियण्ट प्रेस
पटना

हाँ, दो शब्द !

अम्बपाली के बाद यह तथागत।

अपने मूल रूप में यह पटना-रेडियो-स्टेशन से गत बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर चार किश्तों में प्रसारित किया गया था।

रंगमंच के योग्य बनाने के लिए काफी उलटफेर की गई है—क्योंकि रंगमंच पर जहाँ आँख और कान दोनों से रसानुभव में सहायता मिलती है, वहाँ रेडियो में सिर्फ कान से ही।

भगवान बुद्ध का चरित महान है। फिर वह सिर्फ ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं, धर्म-प्रवर्तक भी हैं। किन्तु, मैंने तो मुख्यतः उनके चरित-भाग से ही अपने को सम्बद्ध रखा है, जो बहुत ही उदात्त और बहुत अंशों में नाटकीय भी है।

वैभव-विलास में डूबा हुआ एक राजकुमार संसार के दुःख-दर्द से क्षुभित-पीड़ित होकर घर छोड़ता है; घोर तपस्या करता है; निराशाओं पर निराशायें पाता है; अन्त में ज्ञान की किरणें उसे प्राप्त होती हैं और फिर उसके प्रचार-प्रसार में वह लग जाता है। वहाँ भी तरह-तरह के विघ्न, उत्पीड़न, लाँछन! किन्तु अन्त में सत्य की विजय होती है। आज भी संसार में बुद्ध के अनुयायियों की संख्या असंख्य है।

जब मैं तथागत लिख रहा था, मालूम होता था, महात्मा गांधी के चरित के प्रभामंडल के बीच से मैं गुजर रहा होऊँ!

एक विदेशी लेखक ने बापू के बारे में कहा भी था कि बुद्ध के बाद गाँधीजी का ही व्यक्तित्व उतना महान है।

किन्तु बुद्ध ऐसे महापुरुष पर नाटक लिखना कितना कठिन है, इसे पद-पद पर मैं अनुभव करता रहा। इसके लिए मुख्यत: बौद्ध-ग्रन्थों का छोर पकड़कर ही मुझे बढ़ना था और अपनी कल्पना पर तो हमेशा अंकुश रखना था ही। अम्बपाली की तरह मेरी लेखनी यहाँ स्वतंत्र न थी। लेकिन इसका आधार ही इतना महान है कि मित्रों का कहना है, नाट्यकला इसमें अधिक परिपुष्ट हुई है

मैं अपना 'तथागत' मुख्यत: देश के किशोरों और नवयुवकों के हाथों में इस आशा में अर्पित करता हूँ कि वे इससे प्रेरणा पाकर सत्य के अनुसंधान की ओर प्रवृत्त हों, उसके लिए कष्ट उठाना सीखें और सारी विघ्नबाधाओं के बीच भी अपनी मशाल लेकर बढ़ते हुए विजय प्राप्त करें।

तथास्तु !

पटना
दीपावली, १६४८

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

पात्रियाँ

माया	: बुद्ध की माता
यशोधरा	: बुद्ध की पत्नी
प्रजावती	: बुद्ध की सौतेली माँ
सुजाता	: उरुबेला की एक महिला
पूर्णा	: सुजाता की दासी
गौतमी	: राजगृह की एक स्त्री
माणविका	: श्रावस्ती की एक स्त्री
अम्बपाली	: वैशाली की राजनर्तकी

नागरिका, परिचारिका आदि

पात्र

शुद्धोधन	: बुद्ध के पिता
बुद्ध	: नाटक के नायक
राहुल	: बुद्ध का पुत्र
कौण्डिन्य	: ज्योतिषी
उदय	: बुद्ध के सखा
आनन्द	: बुद्ध के प्रधान शिष्य
देवदत्त	: बुद्ध के प्रतिस्पर्द्धी
छंदक	: बुद्ध का सारथी
बिम्बसार	: राजगृह का सम्राट्
अजातशत्रु	: बिम्बसार का बेटा
भद्रजित	: बुद्ध का तपस्वी साथी
यश	: बारानसी का श्रेष्ठिपुत्र

नागरिक, पुरोहित, गरेड़िया, भिक्षुक आदि

तथागत

अन्तिम शृंगार

१

[जन्म : लुम्बिनी बन]

माया—कितना सुन्दर लग रहा है, आर्य !

शुद्धोदन—हाँ, बहुत ही सुन्दर ! ये पेड़, ये लतायें, ये पौदे, ये मंजरियाँ, ये कलियाँ, ये फूल—सुन्दर, अति सुन्दर माया !

माया—इच्छा होती है, कुछ दिन यहीं रहूँ आर्य ! नगर देखते-देखते आँखें ऊब उठी हैं।

शुद्धोदन—और, यहाँ अपने से कुछ समता भी तो पा रही हो प्रिये ! अपनी मंजरियों के बोझ से आप ही व्याकुल ये पेड़, अपनी कलियों की दबाव से आप ही काँपती ये लतायें, अपने

फूलों की शोभा में आप ही गुम हुए-से ये पौदे—तुम्हारा भी तो कुछ ऐसा ही हाल है माया !

माया—लज्जित न कीजिये आर्य ! कितने दिनों के बाद......

शुद्धोदन—हाँ, कितने दिनों के बाद भगवान ने हमें यह दिन दिखलाया है। मैं समझता था, सारा जनपद समझता था कि शाक्यवंश का सूर्य शायद सदा के लिये अस्त होने जा रहा है; कि अचानक......

माया—अभी वह रात नहीं भूली है आर्य, जब मैंने वह स्वप्न देखा। वह स्वप्न ! कैसा सुन्दर था हाथी का वह बच्चा—उजला रंग, जैसे अभी दूध में नहा कर आया हो। छोटी-सी सूँड़ को उछालता, डुलमुल चलता, वह मेरी ओर बढ़ा आ रहा था। इच्छा होती थी, वह निकट आये और उसे गोद में ले लूँ......

शुद्धोदन—कि तुमने पाया, तुम्हारे शरीर में वह जैसे विलीन-सा हो गया। इसके क्या मानी, समझीं ?

माया—ओह, मुझे लज्जित न किया कीजिये, नाथ !

शुद्धोदन—यह लज्जित होने का नहीं; आनन्दित, उच्छ्वसित होने का प्रसंग है, प्रिये ! इसका मानी है, भगवान हमें एक प्रतापी पुत्र देंगे।

माया—(प्रसंग बदलने के लिए) आर्य, सामने का यह पेड़ कितना घना है।

शुद्धोदन—बहुत ही घना, मानों हरा वितान बना हो।

माया—और ये मंजरियाँ उसकी झालरें हैं! जरा हम उसे निकट से क्यों न देखें आर्य!

शुद्धोदन—जरूर देखें, चलो! (दोनों पेड़ के निकट जाते हैं)

माया—उफ! मंजरियों के ये गुच्छे! इच्छा होती है, मंजरियों के इन गुच्छों को गले से लगा लूँ। अहा! (वह उचककर पकड़ना चाहती है)

शुद्धोदन—अरे, उचको मत माया! प्रिये, तुम भावावेश में अपने शरीर की अवस्था भी भूल जाती हो!

माया—(हाँफती हुई) गलती हुई आर्य! किन्तु कितनी अच्छी लगती हैं मंजरियों से भरी ये डालियाँ!

शुद्धोदन—डालियों की शोभा तब, जब वे मंजरियों से लदी हों; नारियों की शोभा तब, जब वे......

माया—आर्य, आर्य! मुझे बार-बार लज्जित न किया कीजिये! अहा, क्या मैं इन डालियों को छू नहीं सकती?

शुद्धोदन—क्यों नहीं, मैं अभी झुकाये देता हूँ! (डाली की फुनगी पकड़कर झुका रहे हैं, माया भावातुरता में उचककर डाली पकड़ना चाहती हैं) फिर यह क्या? जल्दी न करो माया! उचकने की जरूरत नहीं, बौरी हुई डाली है, इसलिए धीरे-धीरे नीचा कर रहा हूँ इसे।

माया—कितनी सुन्दर लग रही है यह आर्य! (डाली नीचे

आती-जाती है, वह उचककर पकड़ लेती है, फिर दबी हुई आवाज से कराह उठती है) आह !

शुद्धोदन—अरे, यह क्या ? (डाली छोड़कर माया को पकड़ते हुए) तुम्हें क्या हुआ, जो यों कराह उठी माया !

माया—आह !......नाथ ! आह ! (शुद्धोदन के बदन से लिपट जाती है)

शुद्धोदन—माया, माया ! तुम्हें यह क्या हो गया माया ! परिचारिके, परिचारिके, शिविका ! कोई है, जल्दी शिविका लाओ ! शिविर में चलो, माया !

माया—जा नहीं सकती नाथ, जा नहीं सकती ! ओह !

शुद्धोदन—माया !

माया—नाथ ! नाथ ! आह !

शुद्धोदन—तुम्हें यह क्या हो रहा है माया ! कैसा जी है ? बताओ—बताओ !

माया—उफ, मैं बैठ नहीं सकती......चल नहीं सकती... ...मैं हिल भी नहीं सकती......आह......

शुद्धोदन—(समवेत दास-दासियों से) तुमलोग क्या मुँह देख रहे हो ? चारों ओर से कनातें खड़ी करो—धाइयों को बुलाओ। जल्दी करो, जल्दी !

माया—आह, ओह !

(थोड़ी देर में नेपथ्य से मंगल बधैया)

छः

२

[भविष्यवाणी : कपिलवस्तु का राजप्रासाद]

(ज्योतिषी कौण्डिन्य का प्रवेश)

कौण्डिन्य—जय हो महाराज की !

शुद्धोदन—शतशः प्रणाम महर्षि ! आसन ग्रहण कीजिये। बच्चे की कुण्डली देख ली ?

कौण्डिन्य—देख ली ! यों तो कुण्डली के पहले बच्चे की आकृति ही सब बता चुकी थी, महाराज !

सचिव—महर्षि कौण्डिन्य ठीक कह रहे हैं, इतना सुन्दर शिशु बढ़ने पर प्रतापी हुए बिना नहीं रह सकता।

कौण्डिन्य—महाराज ! शिशु की चौड़ी ललाट, सघन भवें, लम्बी पपनियाँ और स्थिर पुतलियाँ डंका पीट-पीट कर कहती हैं, यह बच्चा साधारण बच्चा नहीं ! फिर उसकी तलहथी और उंगलियाँ रेखा-जालों से आवृत हैं और पैरों में चक्र के चिह्न हैं।

सचिव—मैंने भी इनपर ध्यान दिया है, ऋषिवर !

कौण्डिन्य—इन लक्षणों को कुण्डली से मिलाकर देखिये, तो बातें और स्पष्ट हो जायँ।

शुद्धोदन—हमें शीघ्र बताया जाय महर्षि !

कौण्डिन्य—इस शिशु के भाग्य में चक्रवर्तित्व लिखा है।

शुद्धोदन—यह चक्रवर्ती होगा ?

कौण्डिन्य—उससे भी बड़ा ! भरत-खंड और जम्बूद्वीप पर ही नहीं, विश्व के कोने-कोने में इसका आधिपत्य फैलेगा।

शुद्धोदन—आह, आज माया न रही ! अपने बच्चे की यह भविष्यवाणी सुनकर आज उसे कितनी प्रसन्नता होती !

कौण्डिन्य—और भी सुनिये महाराज ! कोई शत्रु इसके सामने टिक नहीं सकेगा। जो कोई भी इसके सामने आयगा. उसका सिर झुककर रहेगा। बड़े-बड़े सम्राटों के मुकुट इसके चरणों की धूल चाटेंगे !

सचिव—चरणों की धूल ! ऋषिवर, आप कहने में गलती कर गये हैं। राजपुत्र के पैरों में क्यों धूल आये, पादुका या पदत्राण कहिये।

कौण्डिन्य—मैं ज्योतिष की गणना की बात कह रहा हूँ: काव्य नहीं कर रहा, सचिववर ! (शुद्धोदन से) हाँ, बड़े-बड़े सम्राटों के मुकुट इसके चरणों की धूल चाटेंगे और इसके पास ऐसी और इतनी बड़ी सेना होगी, जिस तरह की और जितनी बड़ी सेना संसार में कभी नहीं देखी गई।

सचिव—जितनी बड़ी तो समझा, पर जैसी का क्या अर्थ है, ऋषिवर !

कौण्डिन्य—अर्थ लगाना आपका काम है। मैं लिखनेवाला नहीं, पढ़नेवाला हूँ। जो लिखा है, मैं पढ़ रहा हूँ; आप अर्थ

लगाते रहिये। (शुद्धोदन से) तो महाराज, इसकी यह अपूर्व सेना जहाँ जायगी, विजय ही विजय प्राप्त करेगी और दसों दिशाओं में अपनी विजय-वैजयन्ती फहरानेवाला आपका यह प्रतापी पुत्र दीर्घायु प्राप्त करेगा और अन्ततः जिस परिस्थिति में उत्पन्न हुआ है, उसी परिस्थिति में, उसी प्रकार, सुख से स्वर्गारोहन करेगा ।

सचिव—जिस परिस्थिति में उत्पन्न हुआ उसी परिस्थिति में, सुख से......

कौण्डिन्य—हाँ-हाँ, सचिव ! कुण्डली में यही लिखा है। जिस परिस्थिति में, जिस प्रकार सुख से उत्पन्न हुआ, उसी तरह की परिस्थिति में, उसी प्रकार सुख से स्वर्गारोहन करेगा।

सचिव—आप कुछ अजीब भविष्यवाणी कर रहे हैं ऋषिवर!

कौण्डिन्य—कह दिया, मैं भविष्यवाणी नहीं कर रहा; जो कुण्डली कहती है, मैं दुहरा भर रहा हूँ।

सचिव—लक्षण विचित्र हैं।

कौण्डिन्य—हाँ, लक्षण विचित्र हैं। यह चक्रवर्ती सम्राट् पर भी लागू है और......

शुद्धोदन—
सचिव— } और......

कौण्डिन्य—इतना अधीर हो रहे हैं आपलोग ! तो सुनिये—यह बच्चा प्रतापी सम्राट् होगा या विश्व-विश्रुत धर्म-प्रवर्तक !

शुद्धोदन—धर्म-प्रवर्तक ?

सचिव—तपस्वी, भिक्षु !

(प्रजावती का प्रवेश)

प्रजावती—महर्षि, महर्षि ! यह क्या कह रहे हैं आप ? माया का पुत्र और भिक्षु ! माया प्रसूतिगृह में ही चल बसी, क्या मुझे

कौण्डिन्य—(हँसते हुए) रानी प्रजावती, मायारानी अकेली गई; किन्तु आप अकेली नहीं जायँगी, एक पूरा महिला-समाज आपका अनुसरण करेगा। अच्छा, मैं चला महाराज !

शुद्धोदन—यह आप क्या कहे जा रहे हैं महर्षि !

कौण्डिन्य—जो लिखा हुआ है, वही। नमस्कार महामंत्री !

३

[प्रथम आखेट : कपिलवस्तु के निकट की वनस्थली]

उदय—मारिये तीर कुमार, वह......

सिद्धार्थ—वह ? किधर उदयी !

उदय—वह देखिये, वह एक मृग-छौना खड़ा है !

सिद्धार्थ—कितनी बड़ी-बड़ी उसकी आँखें हैं उदयी ! इतनी सुन्दर आँखें आदमी को क्यों नहीं दी गईं ?

उदय—भाग जायगा कुमार, भाग ! जल्दी निशाना लीजिये।

सिद्धार्थ—निशाना ? इसपर तीर ? उदयी, इच्छा होती है,

दौड़कर इसके गले से लिपट जाऊँ और इसकी आँखें चूमूँ—इसकी सुन्दर आँखें, मासूम आँखें, डरी हुई आँखें ! हाँ-हाँ, इसकी आँखों में कितना डर है उदयी ! आदमी से ये इतना डरते क्यों भला ?

उदय—और लीजिये, वह भाग गया।

सिद्धार्थ—उफ, भाग गया ! थोड़ी देर और क्यों न ठहरा उदयी !

उदय—खैर, आपका भाग्य ! देखिये-देखिये; एक गया, दूसरा आया ! वह देखिये......

सिद्धार्थ—कहाँ ? वह ? वह कौन-सा जानवर है उदयी !

उदय—शशक-शावक ! खरहे का बच्चा !

सिद्धार्थ—ओहो, कितने सुन्दर कान हैं इसके ! उजले-उजले ये कान उस झाड़ी में भी प्रकाश फैला रहे हैं मानों !

उदय—यह भी भगा, नहीं तो मारिये !

सिद्धार्थ—थोड़ा और देख लेने दो भाई ! अब मैं रोज शिकार को आऊँगा। कितने सुन्दर जानवर होते हैं जंगल में ! आदमी इन्हें क्यों नहीं पालता ? पाला है उसने घिनौने कुत्ते को, चोरन बिल्ली को ! उदयी, इन्हें पकड़कर हम घर ले चलें। चलो......

(आगे बढ़ते हैं, खड़खड़ाहट, शशक-शावक भाग जाता है)

उदय—वह भी गया ! आपको, महाराज ! फिजूल साथ में लाये। आपसे शिकार न होगा।

सिद्धार्थ—नहीं-नहीं, मैं अब प्रतिदिन शिकार में आऊँगा उदयी ! आऊँगा, इन खूबसूरत जानवरों को देखूँगा । किन्तु, ये हमारे निकट क्यों नहीं आते ? क्यों भाग जाते हैं उदयी ? (एक पेड़ से पंडुक की आवाज) और यह क्या बोल उठा उदयी ?

उदय—पंडुक है । उसपर हाथ आजमाइयेगा ? तो चलिये । (कुछ आगे बढ़कर) देखिये, उस डाल पर !

सिद्धार्थ—ओहो, एक नहीं, दो-दो ! उदयी ! खड़खड़ मत करो, कहीं ये भी न उड़ जायँ !

उदय—उसके पहले ही तीर मारिये कुमार !

सिद्धार्थ—किस तरह एक दूसरे से सट कर बैठे हैं दोनों ! एक कुछ कहता है, दूसरा जवाब देता है ! क्या ये दोनों भी हमारे-तुम्हारे ऐसे दोस्त हैं उदयी !

उदय—मारिये राजकुमार, जल्द तीर मारिये ।

सिद्धार्थ—मारूँ ? उदयी हम - तुम में से एक को कोई यों ही तीर मारे, तो हमें कैसा लगेगा ?

उदय—फिर वही बातें ! नहीं-नहीं, आपसे शिकार न होगा !

(पीछे से आवाज) 'पकड़ो, पकड़ो' !

सिद्धार्थ—पकड़ो ! (मुड़कर) यह तो देवदत्त है ! कहाँ दौड़ा आ रहा है ? क्या बात है ? अरे......(एक हंस सामने आ गिरता है, उसे देखकर) उदयी, उदयी ! अरे-अरे, इसे क्या हुआ है उदयी !

(हंस के निकट पहुँचकर, झपटकर, उसे उठा लेते हैं)

देवदत्त—(निकट आकर) हंस मेरा है, इसे मत छूना सिद्धार्थ !

सिद्धार्थ—तुम्हारा हंस है देवदत्त ! ओह, किस दुष्ट ने इसे मार दिया ?

देवदत्त—मैंने मारा है, लाओ ।

सिद्धार्थ—तुमने मारा है ? अपने हंस को ? अपने हंस को क्या इस तरह मारा जाता है ? नहीं-नहीं, तुमने नहीं मारा होगा । उफ़, बेचारे की गर्दन में आ लगा है, यह तीर ! उदयी, थोड़ा पानी लाओ भाई, बेचारा मुँह बा रहा है ।

देवदत्त—अभी मुँह बा रहा है, थोड़ी देर में मुँह में पड़ेगा ।

सिद्धार्थ—मुँह में पड़ेगा ? तुमने अपने हंस को खुद मारा और अब उसे खाने की तैयारी में हो ? नहीं-नहीं, तब यह तुम्हारा हंस नहीं है । हाय-हाय, कितना खून बहा जा रहा है इसकी गर्दन से ! उदयी, जल्दी पानी लाना भाई !

देवदत्त—ज्यादा ज्ञान मत बघारो, दो मेरा हंस !

सिद्धार्थ—तेरा हंस ? यह तुम्हारा हंस हो नहीं सकता देवदत्त ! अपने हंस को लोग यों नहीं मारते । देखो, कैसी दुर्गति कर दी है इसकी तुमने !

देवदत्त—तुम्हारा ही जन्म शाक्यकुल में होना था सिद्धार्थ ! 'खून', 'उफ', 'हाय'—मालूम होता है, थोड़ी देर में तुम रोओगे ।

सिद्धार्थ—मेरा रोआँ-रोआँ तो रो रहा है देवदत्त ! क्या इस बेचारे की हालत को देखकर तुम्हें दया नहीं आती ?

देवदत्त—क्षत्रिय खून देखकर हँसते हैं, रोना काम तो......

सिद्धार्थ क्षत्रिय निरीह प्राणी का खून देखकर हँसते हैं ? क्षत्रिय इतना निर्दय और क्रूर नहीं हो सकते देवदत्त !

देवदत्त—मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहता। निश्चय ही तुम शाक्यकुल में कलंक लगाकर रहोगे !

सिद्धार्थ—कलंक और मैं ? हाँ, निरीह प्राणियों का खून बहाकर शाक्यवंश पर जितना कलंक लगा होगा, मैं उसे धोने को कोशिश जरूर करूँगा।

देवदत्त—कह दिया, ज्ञान मत बघारो ! मेरा हंस दे दो।

सिद्धार्थ—मैं नहीं देता। (उदयी पानी लेकर आता है) पानी ले आये उदयी ! इसकी चोंच के सामने रखो। अहा, किस तरह घट-घट पी रहा है यह पानी! किन्तु, यह क्या ? सारा पानी तो तीर के छेद से निकला जा रहा है। उदयी, उदयी, कोई उपाय करो भाई !

देवदत्त—दे दो मेरा हंस।

सिद्धार्थ—कह दिया, यह तुम्हारा हंस नहीं है। मैं नहीं देता। (उदय से) उदयी, जरा इसके पंख भी धो दो भाई ! उफ ! बेचारा खून-खून हो रहा है !

उदयी—और, यह आपके सारे कपड़े जो खून-खून हो रहे हैं !

सिद्धार्थ—इन्हें भी धोऊँगा और शाक्यकुल के कलंक को भी मुझे ही धोना है उदयी !

देवदत्त—देते हो मेरा हंस, या......

सिद्धार्थ—यह हंस तुम्हारा नहीं है, मैं नहीं देता।

देवदत्त—नहीं देता ? यह धौंस मत दिखलाओ कि तुम युवराज हो !

सिद्धार्थ—जिस कुल में देवदत्त ऐसे वीर-पुंगव हो, उस राज-वंश का युवराज होना कोई गौरव की बात नहीं है देवदत्त !

देवदत्त—बढ़कर बात मत बोलो। हमारा हंस दे दो।

सिद्धार्थ—कह दिया, नहीं दूँगा।

देवदत्त—देना ही पड़ेगा, तुम्हें !

उदयी—आपलोग यह क्या कर रहे हैं ? देखिये, वह महाराज आ रहे हैं। (शुद्धोदन आते दिखाई पड़ते हैं)

देवदत्त—चाचाजी को आज फैसला करना पड़ेगा।

(शुद्धोदन- निकट आकर)

शुद्धोदन—हाँ-हाँ, फैसला करूँगा बच्चो ! लेकिन तुमलोग बार-बार यों झगड़ क्यों पड़ते हो ?

देवदत्त—चाचाजी, सिद्धार्थ मेरा हंस नहीं देते।

शुद्धोदन—तुम तो ऐसे नहीं थे बेटे......

सिद्धार्थ—यह झूठ बोल रहे हैं, पिताजी ! यह इनका हंस नहीं ! अपने हंस को कोई यों मारता है !

देवदत्त—यह शिकार है; जो मारे उसका शिकार !

सिद्धार्थ—यह जीव है; जो बचावे उसका जीव !

शुद्धोदन—ओहो, मामला तो संगीन मालूम पड़ता है। और मैं किसके पक्ष में फैसला दूँ, बेटे के या भतीजे के ?

देवदत्त—आपको राजधर्म निभाना होगा, न्याय करना होगा, चाचाजी !

शुद्धोदन—राजधर्म ! न्याय ! तब तो सिद्धार्थ जीतेगा। मारनेवाले से बचानेवाले का ज्यादा अधिकार है !

४

[अन्तःपुर विहार : कपिलवस्तु का राजप्रासाद]

प्रजावती—कौण्डिन्य की बात गलत थी, मेरा सिद्धार्थ तो पूरा घरबारी हो रहा है।

शुद्धोदन—अच्छा, तो घर में पुतोहू का आना सफल हुआ !

प्रजावती—अभी तो फूल लगे हैं, फल भी लग कर रहेंगे महाराज !

शुद्धोदन—यह सब यशोधरा के रूप-गुण का परिणाम है, प्रजावती !

प्रजावती—आप सच कह रहे हैं महाराज ! यशोधरा एक ही साथ अप्सरा, किन्नरी और देवी है। अप्सरा का रूप,

किन्नरी की कला और देवी के गुण—तीनों का अपूर्व समन्वय हुआ है हमारी इस बेटी में।

शुद्धोदन—सिद्धार्थ का तो उसने मन मोह लिया है जैसे !

प्रजावती—यह तो हमने पहले ही दिन देखा था, महाराज ! आपकी आज्ञा से जनपद भर की कुमारियाँ सिद्धार्थ से उपहार पाने को एकत्र हुईं। रत्न, आभूषण, वस्त्र सबके ढेर लगे थे। कुमारियाँ आतीं और सिद्धार्थ सर नीचा किये ही उन्हें उपहार दिये जाता। जब यशोधरा पहुँची, देने को कुछ नहीं बच गया था। वह सिद्धार्थ के निकट जाकर सर झुकाये खड़ी हो गई। सिद्धार्थ ने उसकी छाया देखी, तो सर ऊँचा करके गीले शब्दों में कहा—'गोपे, तुम्हारे लिए तो कुछ नहीं बचा।' यशोधरा का सर और झुक गया; वह बोली—'कुमार, आपकी कृपा ही बहुत है !' और, दूसरे ही क्षण सिद्धार्थ की आँखें उसकी आँखों में गड़ी थीं और उसके गले की माला यशोधरा की छाती पर झूल रही थी !

शुद्धोदन—हाँ-हाँ, मालूम होता है, दोनों को विधाता ने जैसे एक-दूसरे के लिये ही गढ़ कर भेजा है ! तभी तो कहाँ वह एकान्त-एकान्त खोजने में व्याकुल रहता था और अब तो अन्तःपुर से निकलता ही नहीं है !

प्रजावती—अन्तःपुर में दिन-रात हँसी के फव्वारे छूटते हैं। दिन-रात बाजों और गानों की गुंजार छाई रहती है। कभी

चित्रकारी हो रही है, कभी कविता की टाँग तोड़ी जा रही है। कलाविद् युवतियों का एक पूरा गिरोह इकट्ठा कर रखा है यशोधरा ने, जिनके बीच वह तारा-मण्डित पूर्ण चन्द्र की तरह दिपती रहती है। इस अपूर्व शृंगार-नभ में सिद्धार्थ का अस्तित्व न जाने कहाँ विलीन हो गया है।

(नेपथ्य से धीमे स्वर में संगीत, वाद्य और हँसी के शब्द)

प्रजावती—सुन रहे हैं न ?

शुद्धोदन—हाँ, सुन रहा हूँ, तृप्त हो रहा हूँ प्रजे ! मैं तो हमेशा कौण्डिन्य के भविष्य-कथन की याद से मरा जा रहा था। अब मालूम होता है, डूबता प्राणी थाह में आ गया।

(सचिव का प्रवेश)

सचिव—एक जरूरी बात आ गई है, महाराज !

शुद्धोदन—जरूरी बात ? क्या बात है सचिववर !

सचिव—आप भयभीत न हों महाराज ! यों ही एक छोटी, किन्तु जरूरी बात है।

शुद्धोदन—जबसे कौण्डिन्य कह गये, तबसे भय ने मेरा पिण्ड कभी न छोड़ा।

सचिव—द्वैध भविष्यवाणियों को इतना महत्त्व देने की आवश्यकता नहीं महाराज !

शुद्धोदन—आह, ऐसा ही होता ! तो बताइये मन्त्रिवर !

सचिव—आज मैं प्रातःभ्रमण को निकला, तो पाया सिद्धार्थ-कुमार की काफी निन्दा हो रही है !

शुद्धोदन—सिद्धार्थ ऐसे व्यक्ति की भी निन्दा !

सचिव—यों तो कुछ लोगोंका स्वभाव ही निन्दक का होता है; किन्तु जो निन्दा मैंने सुनी है, उसमें तथ्य है।

शुद्धोदन—तथ्य है !

सचिव—बात यों है, सभी कह रहे हैं कि सिद्धार्थकुमार अन्तःपुर से निकलते ही नहीं, वह तो बिल्कुल घर-घूसन हो रहे हैं। उन्होंने युद्ध-विद्या तो सीखी ही नहीं। सिवा कला के अन्य ज्ञान पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। भला उनसे शाक्यकुल का राज्यधर्म कैसे निभेगा !

प्रजावती—सचिववर, ये निन्दक हमारा घर उजाड़ना चाहते हैं। कितनी चेष्टा के बाद सिद्धार्थ ने सांसारिक सुखों में आसक्ति दिखलाई है, अब वे फिर......

शुद्धोदन—इसमें हमें देवदत्त का हाथ मालूम पड़ता है प्रजे ! उसने सिद्धार्थ के खिलाफ एक अजीब गुट बना रखा है। न जाने उसे किस बात के लिए चिढ़ है !

प्रजावती—यदि उसे सिंहासन पर ही बैठने की इच्छा है, तो आप उसे युवराज नियुक्त कर दीजिये महाराज ! किन्तु, हमारे बेटे को वह हमसे क्यों छीने ?

सचिव—शाक्यकुल का सिंहासन देवदत्त ऐसे व्यक्तियों के लिए नहीं है। किन्तु सिद्धार्थकुमार को अन्तःपुर से अब बाहर निकलना चाहिये। एक बार जब मन रम गया,

तथागत :

तो फिर दूसरी कोई आशंका व्यर्थ है, महाराज! हाथों पर का खाया कबूतर खेतों में चारा नहीं चुगता।

प्रजावती—किन्तु मेरा हृदय काँपता है। मालूम होता है, माया का धरोहर ज्यों ही आँगन से बाहर गया कि आँखों से हमेशा के लिए दूर हुआ। जंगली हाथी फँस गया है सचिव, किन्तु अभी बन की पुकार नहीं भूला है।

शुद्धोदन—मेरे हृदय का भी कुछ ऐसा ही हाल है।

सचिव—किन्तु पितृ-कर्त्तव्य से भी ऊँचा राज्यधर्म है महाराज! सिद्धार्थकुमार को कल से अन्तःपुर से बाहर जाना ही है।

५

[विराग की ओर : कपिलवस्तु के अंचल में]

सिद्धार्थ—रोको, रथ को जरा रोको सारथी!

छंदक—रोक दिया कुमार!

सिद्धार्थ—बाहर की यह हवा! कितनी ठंढक, कितनी ताजगी! फिर यह दृश्यावली! मालूम होता है, मैं सत्य से दूर स्वप्न की दुनिया में जा पड़ा था......और वह—वह क्या है छन्दक!

छंदक—वह?

सिद्धार्थ—हाँ-हाँ, वह ! वह आदमी है या भूत या छाया ? बाल उजले-उजले, ललाट पर सिकुड़न, धँसी आँखें, जो भौंहों से ढँक रही हैं। गाल की जगह हड्डियों का उभाड़, नाक टेढ़ी हो गई है। मुँह में दाँत नहीं। सर किस तरह हिल रहा है उसका ! अस्थि-कंकाल शरीर, झुका हुआ है लाठी पर टेक देकर, जैसे किसीने कमर ही तोड़ दी हो ! क्या वह आदमी है ? या भूत या छाया ?

छंदक—न वह भूत है, न छाया—वह भी आदमी है कुमार !

सिद्धार्थ—आदमी और ऐसा !

छंदक—हाँ-हाँ, आदमी और ऐसा। बचपन में इसने भी दूध पिया, फिर पृथ्वी पर पेट के बल चला, कालक्रम से सुन्दर युवक हुआ और उसी क्रम से यह बुढ़ापे को प्राप्त हुआ है।

सिद्धार्थ—बुढ़ापे को !

छंदक—हाँ, बुढ़ापे को राजकुमार ! यही बुढ़ापा है, जो रूप का हत्यारा है, बल का शत्रु है, शोक का सगा भाई है, आनन्द का काल है, जो मेधा को मींज डालता है, इन्द्रियों को कुचल डालता है; वही बुढ़ापा कुमार !

सिद्धार्थ—क्या सबको बूढ़ा होना पड़ता है ?

छंदक—हाँ, सबको। यह सबपर आता है और सबके बालों से कालापन, ललाट से चमक, आँखों से ज्योति, गालों

से लाली, होठों से हँसी, मुँह से दाँत और हृदय से उमंग छीनकर, लूटकर ले जाता है कुमार !

सिद्धार्थ—मुझे भी बूढ़ा होना पड़ेगा ?

छंदक—यह प्रजा का सौभाग्य होगा ।

सिद्धार्थ—लेकिन मेरा ? नहीं - नहीं, मैं बूढ़ा होना नहीं चाहता ! यह सौभाग्य मैं नहीं लेना चाहता !

छंदक—जो जवानी लेता है, उसे बुढ़ापा भी लेना ही होता है कुमार !

सिद्धार्थ—उफ, मेरा चित्त उद्विग्न हो रहा है छंदक ! रथ को लौटाओ ! लौटाओ !

छंदक—जो आज्ञा, कुमार !

सिद्धार्थ—बुढ़ापा ! बुढ़ापा !! बुढ़ापा !!! उफ !

(पट-परिवर्त्तन)

सिद्धार्थ—उस रास्ते से रथ न ले जाना, जहाँ वह बूढ़ा......

छंदक—महाराज की भी यही आज्ञा है राजकुमार ! किन्तु, उसे आप भूल जाइये !

सिद्धार्थ—बुढ़ापा ! बुढ़ापा ! रूप का हत्यारा ! बल का शत्रु, शोक का भाई, आनन्द का काल...और, अरे-अरे, वह क्या है, सारथी !

छंदक—उधर न देखिये कुमार ! देखिये, इस तरफ पंछियों की एक पाँत आस्मान में किस तरह उड़ी जा रही है !

सिद्धार्थ—मैं बच्चा नहीं रहा छंदक, बताओ वह क्या है? उफ, इसका पेट फूला हुआ है, साँस से शरीर काँप रहा है, कंधे और बाँहुएँ ढीली हैं, शरीर दुबला और पीला है! क्या यह भी आदमी है या भूत या छाया?

छंदक—कुमार, इतनी जिज्ञासा ठीक नहीं!

सिद्धार्थ—तुम्हें बताना ही होगा सारथी, बताओ!

छंदक—उफ, न जाने क्या होना बदा है! कुमार, यह भी आदमी है; यह बीमारी का शिकार...।...

सिद्धार्थ—बीमारी! बीमारी का शिकार! क्या वह कोई खूँखार जानवर है, जो आदमी का शिकार किये फिरता है!

छंदक—कुमार, महाराज ने हमें मना कर दिया है। मुझे उलझन में मत डालिये; कहिये, रथ आगे बढ़ाऊँ?

सिद्धार्थ—कहने से मना कर दिया गया है, तो उसकी जरूरत भी नहीं रह गई छंदक! मैं सब समझ गया। आदमी, आदमी, तू बुढ़ापे का शिकार है, तू रोग का शिकार है, तो भी तू हर्ष मनाता है, सैर किया करता है, उफ, आदमी!

(पट-परिवर्त्तन)

सिद्धार्थ—क्या कहा, यह मुर्दा है? सब आदमी मरते हैं, यह भी मर गया है! तो मुझे भी मरना होगा, तुम्हें भी मरना पड़ेगा? और, मरना पड़ेगा उन सुन्दरियों को, जो मुझे दिन-रात घेरे रहती हैं? मृत्यु-मृत्यु! बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु!

तथागत :

मानवता के ये ही तीन वरदान हैं ! इन्हीं वरदानों को लेकर वह हँस रहा है, खेल रहा है, मौज कर रहा है। और, मजा यह कि वह अपने को बुद्धिमान समझता है। मानव, मानव ! तुम्हारे यही वरदान हैं—बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु ! वरदान, इसी वरदान की भट्ठी में जला करो, मानव ! आखिर तुम जलोगे, अब भी जला करो ! छंदक, रथ वापस ले चलो !

(पट-परिवर्त्तन)

सिद्धार्थ—बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु के बीच यह इतना आनन्द से कैसे विचर रहा है, सारथी !

छंदक—क्योंकि इसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है ! इसने समझ लिया है कि यह संसार क्या है, इसका सार क्या है ? बड़ी तपस्या से यह ज्ञान प्राप्त होता है कुमार !

सिद्धार्थ—तपस्या से ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान प्राप्त होने पर आदमी सदा आनन्द से रहता है ? बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु के बीच भी आनन्द से रहता है !

छंदक—हाँ कुमार ! ऐसा ही हम देखते-सुनते आये हैं।

सिद्धार्थ—तो आदमी ज्ञान क्यों नहीं प्राप्त करता ? ज्ञान के लिए तपस्या क्यों नहीं करता ? क्यों तुच्छ भोग में भूला रहता है, छंदक ! उफ, लौटाओ रथ......

६

[अन्तिम शृंगार : कपिलवस्तु के राजप्रासाद का शृंगार-कक्ष]

यशोधरा—इधर आप अजीब उदासीन रहने लगे हैं, आर्यपुत्र ! बात क्या है ?

सिद्धार्थ—उदासीन ? तुमसे मैं कभी उदासीन नहीं हो सकता यशे !

यशोधरा—मुझसे न सही, अपने से उदासीन तो आप दीखते ही हैं। इधर आपने स्वर्ण-दर्पण भी नहीं देखा, नहीं तो पाते......

सिद्धार्थ—रुक क्यों गई ? क्या पाता मैं ?

यशोधरा—ये रुक्ष बाल, जहाँ काले-घुँघराले भौंरों-से लट लटकते होते थे, वहाँ ये बिखरे, उखड़े जटा ऐसे......

सिद्धार्थ—जटा ऐसे ? क्या मेरे बाल तपस्वियों की जटा ऐसे लगते हैं यशे !

यशोधरा—हाँ, आर्यपुत्र ! राजकुमार के बाल और ऐसे ?

सिद्धार्थ—तपस्वियों की जटा ऐसे ? यशे, एक बार जंगल की ओर चलो न !

परिचारिका—क्या कुमार अपने जन्म की तरह ही अपने पुत्र के जन्म की भी कामना करते हैं ?

सिद्धार्थ—परिचारिके, हाँ, मैं भूल गया था, ओहो यह......

परिचारिका—अब जिस किसी दिन भी शाक्यकुल का नया सूर्य उदय हो सकता है, राजकुमार !

यशोधरा—वाचाल मत बन परिचारिके ! जा, आर्यपुत्र के लिये शृंगार-प्रसाधन का आयोजन कर। मुझसे चला-फिरा नहीं जाता, तो तुमलोगों ने भी आर्यपुत्र का शृंगार-प्रसाधन छोड़ दिया ! ये बाल ! क्या देवताओं को भी ऐसे बाल मिले हैं ? और, ये जटा ऐसे हो रहे हैं !

(परिचारिका जाती है)

सिद्धार्थ—जटा ऐसे ! हाँ यशोधरे, जटा ऐसे !

यशोधरा—मैं इन्हें इस तरह नहीं रहने दे सकती आर्यपुत्र !

सिद्धार्थ—कब तक ?

यशोधरा—क्या मुझसे इतनी बड़ी अवज्ञा हो गई है, जो आप यों कह रहे हैं ?

सिद्धार्थ—अवज्ञा और तुमसे ? सिद्धार्थ ने यशोधरा को पाकर अपने को सदा धन्य समझा है, मेरी रानी !

(परिचारिका का प्रवेश)

परिचारिका—शृंगार-प्रसाधन के सारे सामान तैयार हैं, देवी !

यशोधरा—तो लाती क्यों नहीं ?

सिद्धार्थ—हाँ-हाँ, ला ! (रुककर) बहुत दिनों पर यह शृंगार हो रहा है और कौन जाने, यह कहीं अन्तिम शृंगार......

यशोधरा—अन्तिम शृंगार? फिर यह क्या बोल गये आर्यपुत्र ?

सिद्धार्थ—कुछ नहीं ! आज मेरा शृंगार करा रही हो, कौन जाने, कल से फिर तुम्हें अपने शिशु से ही अवकाश न मिले !

यशोधरा—आपका बच्चा पितृ-द्रोही हो सकता है और आपकी पत्नी आपके चरणों से दूर रह सकती है—यह क्या सोचा करते हैं आर्यपुत्र ?

सिद्धार्थ—मेरे कथन का यह तात्पर्य था ? तो गलती हुई ! मेरा शृंगार-प्रसाधन कराओ यशे !

(गुनगुनाती हुई परिचारिकायें शृंगार-प्रसाधन कर रहीं, प्रजावती का प्रवेश)

प्रजावती—ओहो, मेरा बेटा आज साक्षात् इन्द्र मालूम हो रहा है !

यशोधरा—आज आपके बेटे को देखकर इन्द्र का सिंहासन हिल रहा होगा अम्मा !

सिद्धार्थ— मैं तो उसे हिलता देख रहा हूँ यशे ! देखो, वह सिंहासन हिला, वह अपनी जगह से हटा, वह उड़ा आ रहा है !

यशोधरा—अब कवि होने में थोड़ी ही कसर रह गई है आर्यपुत्र को !

प्रजावती—कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू ! कवि और भगवान एक होते हैं बेटी !

यशोधरा—तो मैं अपने भगवान को प्रणाम करती हूँ ! (झुकती है)

सिद्धार्थ—(इससे उदासीन) कविर्मनीषी ! कवि और ऋषि !

(उदय का प्रवेश, यशोधरा चली जाती हैं)

उदय—ओहो, आज तो आप सचमुच कवि, ऋषि और भगवान तीनों मालूम होते हैं। यह सुन्दर रूप, यह अपूर्व शृंगार ! यह दार्शनिकों की ललाट और रह-रहकर उसपर खिंच जानेवाली ये चिन्ता-रेखायें ! फिर चेहरे से जो अपूर्व ज्योतिमंडल फूट रहा है—सचमुच, कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू।

सिद्धार्थ—अरे, बताओ यह शृंगार मेरा कैसा हो पाया है, उदयी ! यशोधरा कहती थी, मेरे बाल जटा-ऐसे ! अरे, यशोधरा ? चली गई !

प्रजावती—वह ज्यादा देर खड़ी नहीं रह सकती बेटा !

सिद्धार्थ—और, मैं ज्यादा देर बैठा नहीं रह सकता माँ ! क्या शृंगार पूरा नहीं हुआ है ?

परिचारिका—कंधे पर यह चादर डाल लेना रह गया है।

सिद्धार्थ—यह चादर ! ऐसी चादर तो अपने जनपद में नहीं बनती ! परिचारिके, तुमने इसे कहाँ पाया है ?

परिचारिका—अभी-अभी एक व्यक्ति कुमार के लिए उपहार दे गया है, जिसे महाराज ने भेजवाया है।

सिद्धार्थ—यह कहाँ की चादर हो सकती है उदयी !

उदय—मैं नहीं जानता कुमार ! शायद अम्मा जानें !

प्रजावती—अपूर्व चादर है, उदयी !

सिद्धार्थ—हाँ, अपूर्व चादर ! मेरा कवि कहता है, यह चादर इन्द्र ने भेजी है।

उदय—हाँ, यह इस लोक की तो नहीं ही हो सकती !

(दूसरी परिचारिका का प्रवेश)

परिचारिका—(प्रजावती से) अम्मा, आपको पोता हुआ है !

प्रजावती—क्या कहा ?

परिचारिका—शाक्यकुल का नया सूर्य उदय हो गया ! देवी यशोधरा ने पुत्र-रत्न प्राप्त किया है !

प्रजावती—मैं चली बेटा; परिचारिकाओ, उत्सव मनाओ !

(प्रजावती और परिचारिकाओं का प्रस्थान)

सिद्धार्थ—उदयी !

उदय—कुमार !

सिद्धार्थ—एक नया बंधन तैयार हुआ, उदयी !

उदयी—यह क्या कह रहे हैं, कुमार !

सिद्धार्थ—मैं क्या कह गया ? नहीं-नहीं; चलो, हमलोग भी उत्सव मनावें ! राग-रंग, धूम-धाम (बच्चे के रोने की आवाज, सिद्धार्थ धीमे से) क्रन्दन, बन्धन ! बन्धन, क्रन्दन !

७

[महाभिनिष्क्रमण : अनोमा नदी के तट पर]

सिद्धार्थ—राजधानी से हम कितनी दूर हैं, छंदक !

छंदक—कुमार, हमलोग कहाँ जा जा रहे हैं ?

सिद्धार्थ—कहाँ जा रहे हैं ? यह मैं भी नहीं जानता छंदक ! किंतु कहीं जा रहे हैं, कहीं जा रहे हैं। और किसीको . किसीको छोड़े आ रहे हैं ! किसको ? उफ, सब कुछ मिथ्या है— मिथ्या है छंदक ! सत्य है सिर्फ बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु !

छंदक—आह, उन्हें भूल जाइये, कुमार !

सिद्धार्थ—भूल जाऊँ ? क्या यह भूलने की बात है, छन्दक ! उफ, किस तरह लार बह रही थी, किस तरह झाग गिर रहे थे ! यही सौंदर्य है ! उनकी नाक से साँस निकल रही थी या नागिनी फुफकार मार रही थी। कपड़े हटे—पर्दे ने जिन्हें सुन्दरता दे रखा था, वे ही अंग किस तरह वीभत्स लगते थे ! सब मिथ्या है, वीभत्स है, असुन्दर है, अशोभन है ! ऊँह ! हम राजधानी से कितनी दूर पर हैं छंदक !

छंदक—कुमार यह सब क्या कह रहे हैं आप ?

सिद्धार्थ—तुमने देखा नहीं छंदक, देखा नहीं ! जिसे तुम सौंदर्य कहते हो, वह कैसा वीभत्स है। और, संगीत ! वीणा उलटी पड़ी थी, मृदंग लुढ़के हुए थे ! सब साज बिखरे थे !

स्वर नहीं, झंकार नहीं; एक शून्य, एक हाहाकार! हाँ, मौन जैसे चीख रहा हो! वहाँ मैं टिक नहीं सकता था छंदक! मैं भागा—भागा...।...

छंदक—ओह, कुमार!

सिद्धार्थ—छंदक, घबराओ मत; सब मिथ्या है! राज्य मिथ्या है, राजसिंहासन मिथ्या है; राजा मिथ्या है, प्रजा मिथ्या है। सत्य है सिर्फ—बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु और परम सत्य है ज्ञान। समझे ?

छंदक—उफ! उफ!

✓ सिद्धार्थ—हाँ, अफसोस की बात है। यह दुनिया ऐसी है, जिसपर आदमी सिर्फ उफ या आह कर सकता है। इसमें क्रन्दन-क्रन्दन है, बन्धन-बन्धन है! बन्धन—माँ बन्धन, बाप बन्धन, स्त्री बन्धन, पुत्र बन्धन! पुत्र!! छंदक, मैंने उस नवजात शिशु को देखा है छंदक! किस तरह अपनी माँ की गोद में चिपका पड़ा था। माँ, यशोधरा, अपने बच्चे के सिर से होठ सटाये, एक हाथ उसपर हौले रखे, वह किस तरह सोई थी! किस तरह सोई थी, कैसी सुन्दर लग रही थी!—उफ, बन्धन, बन्धन! छंदक, तुम बोलते क्यों नहीं ?

छंदक—कुछ नहीं समझ रहा कुमार! आप हमें कहाँ लिये जा रहे हैं ?

सिद्धार्थ—कहाँ लिये जा रहा हूँ, कहाँ से आ रहा हूँ! सब कुछ मिथ्या है, सब कुछ बंधन है, सत्य है सिर्फ ज्ञान। ज्ञान

में ही आनन्द है। आनन्द की ओर जा रहा हूँ, छंदक! बंधन तोड़कर, मिथ्या छोड़कर, ज्ञान की ओर, आनन्द की ओर जा रहा हूँ! राजधानी से हम कितनी दूरी पर हैं? रात कितना बाकी है?

छंदक—कुमार, कुमार! बहुत दूर आ गये, अब लौटिये।

सिद्धार्थ—ज्ञान का पथिक चले हुए रास्ते से फिर नहीं लौटता, छंदक! मैं लौटूँगा, पिताजी को कह देना, मैं लौटूँगा। मौसी को कह देना, मैं लौटूँगा। यशोधरा को कह देना, मैं लौटूँगा और छंदक, जब वह शिशु बड़ा हो, उसे भी कह देना—मैं लौटूँगा! लौटूँगा; लेकिन इस रास्ते से नहीं, इस भेष में नहीं। लौटूँगा; मिथ्या को दूरकर, बंधनों को जलाकर, ज्ञान की उपलब्धिकर, आनन्द को प्राप्तकर लौटूँगा। हाँ-हाँ, लौटूँगा; छंदक! अरे, यह कलकल क्या सुन रहा हूँ?

छंदक—निकट ही अनोमा नदी है, कुमार!

सिद्धार्थ—नदी है! राम गंगा-तट तक रथ पर चढ़कर आये थे, सिद्धार्थ अनोमा तट तक घोड़े पर आया। राम लौटे, मैं भी लौटूँगा। राम लौटे सीता लेकर; मैं लौटूँगा—ज्ञान लेकर! राम को बाप ने भेजा, मैं बाप से भाग आया। भेद है—कोई बात पूरी तरह दुहरती नहीं है। ओहो, छंदक, वह देखो, पूरब क्षितिज पर लालिमा छिटक रही है—ज्ञान की किरणें फूटकर रहेंगी छंदक! छंदक, ज्ञान की किरणें फूटकर रहेंगी!

[पटाक्षेप]

सुजाता की खीर

१

[शोकाकुल कपिलवस्तु : शुद्धोदन का राजप्रासाद]

शुद्धोदन—छंदक, छंदक ! मेरे बेटे को कहाँ छोड़कर आये छंदक ? ओह......

छंदक—महाराज, महाराज; मुझपर कलंक मत लगाइये महाराज ! मैं कुमार को छोड़कर नहीं आया, कुमार मुझे छोड़-कर चल दिये । मैंने विनती की, प्रार्थना की; हाथ जोड़े, पैर पकड़े; हाँ, पैर पकड़े; किन्तु......

शुद्धोदन—किन्तु वह नहीं रुका, नहीं रुका ! आह, कौण्डिन्य की बात पूरी होकर रही !

प्रजावती—हाय, मेरा बेटा ! उफ़, माया की आत्मा स्वर्ग में ज़ार-ज़ार रो रही होगी ! माया-पुत्र सिद्धार्थ और, वह जंगल-जंगल...! ओह, छंदक, तुमसे धोखा हुआ हमें ! तुम कहाँ ले गये कुमार को, कहाँ छोड़ आये मेरे बेटे को ?

छंदक—मैं ले गया महारानी ? मैं छोड़ आया महारानी ? जो कलंक बदा था, लगा; किन्तु बात कुछ दूसरी ही है, महारानी !

प्रजावती—दूसरी बात ? क्या बात है ? तो बताते क्यों नहीं हो छंदक ?

छंदक—मैं तो देवी यशोधरा के पुत्रोत्सव का नाच-गान देख-सुनकर देर से लौटा और बेसुध सोया था कि कुमार ने मुझे जगाया, कहा—छंदक, जल्द कंथक को तैयार करो, मुझे बाहर जाना है। मैंने कहा—कुमार, यह भी कोई समय है बाहर जाने का, तो बोले—यही समय है, नहीं तो फिर कभी समय नहीं आयगा !

शुद्धोदन—उसने सच कहा था छंदक—'यही समय है, नहीं तो फिर कभी समय न आयगा !' और, तुमने उसकी बात मान ली।

छंदक—उन्होंने कुछ ऐसे शब्दों में मुझे आज्ञा दी कि मंत्राभिभूत की तरह मुझे सब कुछ करना पड़ा, महाराज !

शुद्धोदन—कलेजा फटा जा रहा है; लेकिन मैं सोचता था, एक दिन यह होकर रहेगा ! तो तुम कहाँ तक साथ गये ?

छंदक—अनोमा नदी तक ! रात भर कुमार चलते रहे, चलते रहे; न कहीं विराम, न विश्राम। चलते रहे और कुछ बोलते रहे।

प्रजावती—क्या बोल रहा था मेरा बेटा, छंदक !

छंदक—मैं कुछ समझ नहीं पाता था, महारानी ! हाँ, चार शब्दों को वह बार-बार दुहराते थे—बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु और ज्ञान......

शुद्धोदन—बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु और ज्ञान ! बेटे ने अंतिम के लिए जंगल का रास्ता लिया और बाकी तीन, शुद्धोदन, तुम्हारे लिए छोड़ गया है ! बूढ़े हो ही, अब स्वस्थ रह नहीं सकोगे, इसलिए मरने की तैयारी करो !

(यशोधरा का प्रवेश)

यशोधरा—पिताजी, पिताजी ! आप ऐसा न सोचें पिताजी, फिर मेरा बेटा......

शुद्धोदन—राहुल ! आह, राहुल ! दशरथ को राम के लिए मरने की स्वाधीनता भी थी, शुद्धोदन को राहुल के लिए जीने की लाचारी है ! जीया करो, शुद्धोदन, जीओ !

प्रजावती—अधीर मत होइये महाराज ! (छंदक से) अपने अभागे बाप और इस अभागिनी मौसी के लिए उसने कुछ संदेश भी कहा ?

छंदक—हाँ, देवि ! चलते समय उन्होंने कहा, मौसीजी और

पिताजी से कह देना—मेरे लिये शोक न करें, मैं ज्ञान के अनु-संधान में जा रहा हूँ और उसे पाकर लौटूँगा ! इसी तरह उन्होंने......(गला रुँध जाता है, आँसू आने लगते हैं)

शुद्धोदन—रुक क्यों गये छंदक ?

प्रजावती—रो क्यों पड़े छंदक ?

यशोधरा—मेरे लिए भी कोई सन्देश कहा, क्यों यही बात है न छंदक ?

छंदक—हाँ देवि ! उन्होंने कहा, यशोधरा से भी कह देना—वह घबराये नहीं, मैं ज़रूर लौटूँगा और बड़ा होने पर उस नवजात शिशु से......

यशोधरा—नवजात शिशु ! आह ! एक बार उसे देख भी लिए होते !

छंदक—उन्होंने जाने के पहले देखा था, आर्ये !

यशोधरा—(आश्चर्य में) क्या ? देखा था ?

छंदक—हाँ, देखा था, आप दोनों सोये थे ... वह प्रसूति-गृह के द्वार तक गये। आप बच्चे को लिपटाए हुई सोई थीं। उन्होंने बच्चे को चूमना चाहा......

यशोधरा—हाय, हाय !

छंदक—वह आगे बढ़े, झुके। फिर कुछ सोचकर लौट पड़े—चल पड़े। उन्होंने राहुल को देखा था, छोटी रानी !

शुद्धोदन—सिद्धार्थ ने राहुल को देखा हो, किंतु राहुल बेचारा !

आह, माया पुत्र को नहीं देख सकी, राहुल पिता को नहीं देख पाया !

यशोधरा—पिताजी, व्याकुल मत होइए ! राहुल उन्हें एक दिन खींचकर फिर कपिलवस्तु लावेगा, पिताजी ! मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानती हूँ......

छंदक—और, इन संदेशों के साथ ये धरोहर......

(गठरी खोलता है)

शुद्धोदन—यह मुकुट !

प्रजावती—ये वस्त्राभूषण !

यशोधरा—ये बाल ? आर्यपुत्र के मालूम होते हैं ये बाल ! (उठा लेती है, चूमती है)

प्रजावती—ये बाल ? छंदक !

छंदक—मुकुट और वस्त्राभूषण उतारकर मुझे देने के बाद, अपने ही हाथों, अपनी तलवार से उन्होंने बालों के ये लट काटे और कहा—इन्हें भी लेते जाओ छंदक, ये बाल यशोधरा के बहुत प्रिय थे......

यशोधरा—आह ! आर्यपुत्र इस दासी पर कितने दयालु हैं ! आर्यपुत्र, आर्यपुत्र ! इसी धरोहर को लेकर यह दासी तुम्हारे वियोग के दिन काट लेगी, आर्यपुत्र !

शुद्धोदन—उफ़......

प्रजावती—हाय......

यशोधरा--माँ, पिताजी ! अधीर मत होइये पिताजी !

छंदक--जिसके वियोग में पशु तक प्राणार्पण कर सकता है, उसके वियोग में माँ-बाप......

शुद्धोदन--पशु ? कंथक कहाँ है छंदक !

छंदक--कंथक ! उस पशु ने वह किया, जो किसी भी मानव के लिए स्पृहनीय है महाराज !

शुद्धोदन--क्या किया, क्या हुआ ?

छंदक--जब कुमार चलने लगे, कंथक की आँखों से अविरल अश्रु-प्रवाह जारी हुआ। कुमार ने उसे दुलराया, चुमकारा, उसकी देह पर, पीठ पर हाथ फेरे। इसके बाद जब कुमार आगे बढ़े, वह जोर से हिनहिनाने लगा—जैसे पुकार रहा हो, तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हो ? कुमार ने एक-दो बार घूम-कर देखा, फिर चल दिये। किन्तु यह क्या ! ज्यों ही कुमार आँखों से ओझल हुए, वह जोरों से काँपने लगा, काँपने लगा; फिर थरथरा कर जो गिरा, सो उठा नहीं !

शुद्धोदन--कंथक, कंथक ! सच्चे प्रेम का आदर्श तुम्हींने दिखलाया कंथक; आह !

छंदक—वह हृदय-विदारक दृश्य था महाराज ! कंथक तड़फड़ा रहा था, अन्तिम दम तोड़ रहा था; उधर भिक्षुओं-सा भेष बनाये, नंगे पैर, फटे कपड़े, मुंडित मस्तक, हाथ में भिक्षा-पात्र लिए राजकुमार आगे बढ़े जा रहे थे......

२

[प्रथम भिक्षा : राजगृह में एक घर के सामने [

सिद्धार्थ--माँ, भिक्षा !

नागरिका--ओ तुम ! (चेहरे को घूरती हुई) तुम्हारे योग्य भिक्षा की कोई सामग्री मेरे पास नहीं है, भिक्षु !

सिद्धार्थ--और कुछ नहीं माँ, सिर्फ एक निवाला भोजन !

नागरिका--अभी हमारे घर में भोजन नहीं बना है भिक्षु ! घर में बेटा बीमार है......

सिद्धार्थ--बीमार ! उफ, बीमारी, बुढ़ापा......

(लौटने का उपक्रम)

नागरिका--तो, लौटे जा रहे हो भिक्षु ! थोड़ी बासी खिचड़ी होगी; किन्तु कैसे खा सकोगे उसे ? तुम्हारा यह चाँद-सा चेहरा, कमल-सी आँखें—लम्बी पपनियाँ, सघन भवें, उन्नत ललाट ! वह कौन-सा घर है, जिसे सूना करके भिक्षु बने हो युवक !

सिद्धार्थ--किसी भरे घर को ही छोड़कर आया हूँ माँ ! और, जा रहा हूँ संसार से बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु की विभी-पिका को दूर भगाने का उपचार खोजने।

नागरिका--बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु ! हाय, मेरे पतिदेव चल बसे, प्यारा बेटा बीमार है और यह बुढ़ापा मेरी कमर तोड़ने

को खड़ा है। इन तीनों से संसार को जो त्राण दिला सकेगा, वही मानव-वंश का सबसे बड़ा त्राता समझा जाएगा, भिक्षु ! इस महान अभियान में ईश्वर तुम्हें सफलता दें ! ठहरो. आई। (घर से खिचड़ी लाती है) लो, यह खिचड़ी ! उफ, यह बासी खिचड़ी कैसे खा सकोगे ?

सिद्धार्थ—बस, रहने दो। एक कलछी काफी है माँ !

(थोड़ी दूर हटकर बासी खिचड़ी खा रहे हैं—खाई नहीं जाती—रह-रह कर उकबई आती है—एक नागरिक का प्रवेश)

नागरिक—ओहो, अच्छे तपस्वी हैं आप ! खिचड़ी खाई नहीं जारही......

सिद्धार्थ—हाँ नागरिक, खाई नहीं जा रही। जब साधना के पथ पैर रखो, सारी इन्द्रियाँ विद्रोह करने लगती हैं ! आँख. कान, जिह्वा—सभी हमें नीचे ढकेलने को तैयार हो जाते हैं: किन्तु, यदि लक्ष्य तक पहुँचना है, तो इनपर विजय प्राप्त करना होगा, नागरिक !

(कुछ और नागरिक एकत्र हो जाते हैं)

नागरिक—मालूम होता है, आपकी जिह्वा ने तरह-तरह के सुस्वादु भोजन चखे हैं, जिनकी याद इस बासी खिचड़ी को आपके मुँह से बाहर फेंक देना चाहती है।

सिद्धार्थ—जिह्वा हमेशा सुस्वादु भोजन खोजती है, कान

हमेशा मधुर स्वर खोजते हैं और आँखें सौन्दर्य के लिए पागल बनी रहती हैं। क्या राजा, क्या रंक, सभी इन्द्रियों के दास हैं। मैं इन इन्द्रियों का स्वामी बनूँगा !

(अचानक राजा बिम्बसार आ जाते हैं—उन्हें देखते ही नागरिक सिटपिटा जाते हैं)

बिम्बसार—इन्द्रियों का स्वामी बनूँगा ! युवक, यह दम्भ तुम्हारा सारा पर्दा फाश कर देता है ! निस्सन्देह तुम किसी कुलीन......

सिद्धार्थ—भिक्षु में कुलीन अकुलीन का कोई भेद नहीं होता, आर्य ! अलग-अलग पेड़—आम, जामुन, कटहल ! किन्तु, ज्यों ही कट गये, सब एक—ईंधन !

बिम्बसार—ईंधन में भी एक अरंड और एक चंदन है, युवक ! इस राजगृह में भिक्षुओं की कमी नहीं; किन्तु थोड़ी ही देर में तुमने राजधानी भर में हलचल मचा दी है—सब तुम्हारी चर्चा कर रहे हैं; मगध-सम्राट को भी तुमने पाँव-पयादे यहाँ घसीटा है......

सिद्धार्थ—ओह, आप मगध-सम्राट बिम्बसार ! सम्राट की जय हो !

बिम्बसार—तुम्हें भी जय प्राप्त हो, युवक ! इन्द्रियों का स्वामी बनूँगा—यही सिद्ध करता है, तुम क्षत्रिय-कुमार हो ! स्वामित्व की, जय की आकांक्षा ही क्षत्रिय को दूसरों से पृथक करती है।

तथागत:

किन्तु, युवक, क्षत्रिय-कुमार दसो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के पहले दसो दिशाओं पर विजय प्राप्त करना चाहता है !

सिद्धार्थ—जिसने अपने पर विजय नहीं प्राप्त की, वह दिशाओं पर क्या खाकर विजय प्राप्त करेगा सम्राट !

बिम्बसार—युवक, हर काम के लिए अवस्थायें निश्चित कर दी गई हैं। जवानी है दिशाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए; बुढ़ापा है......

सिद्धार्थ—बुढ़ापा, बुढ़ापा ! बीमारी, मृत्यु !—यही तीन तो मानवता के अभिशाप हैं, सम्राट ! और, बुढ़ापे के अभिशाप से मुक्ति पाने के लिए जवानी से ही तो प्रयत्न करना पड़ेगा मगध-पति !

बिम्बसार—तुम्हें शिक्षा-दीक्षा भी अच्छी मिली है, भिक्षु ! तुम्हारी बातचीत, रूप-रंग, चालढाल सभी बताते हैं, तुम किसी राजकुल से आये हो। और, वह राजकुल धन्य है, जिसमें तुम्हारे ऐसे कुमार उत्पन्न होते हैं ! क्या वहाँ कोई विप्लव हुआ, या कोई खटपट......

सिद्धार्थ—विप्लव ! हाँ, किन्तु बाहर नहीं; भीतर ! और, अपने से खटपट हो चुकती है, तब घर या बाहर से खटपट होती है, सम्राट !

बिम्बसार—शाक्यकुल का कोई राजकुमार गृह-त्यागी हुए हैं, आप वही तो नहीं हैं ?

सिद्धार्थ—भिक्षु का कोई कुल नहीं होता, जिस तरह गरुड़ का कोई घोंसला नहीं होता !

बिम्बसार—छोड़िये इन झमेलों को। मैं बहस करना नहीं चाहता। लेकिन मेरी एक बात—बात नहीं, एक याचना, प्रार्थना ! मगध-साम्राज्य को मैं जिस रूप में विस्तृत और समृद्ध देखना चाहता हूँ, उसमें आपके ऐसे धुनी युवक की सहायता बड़े काम की होगी ! मगध का यह राज्य आपको अर्पित है, यौवन राज्य-शासन में बिताइये—फिर तपोवन ! तपोवन यहाँ से निकट ही है, शाक्य-कुमार !

सिद्धार्थ—राज्य-शासन !...तपोवन...! दोनों में से मैंने पहले ही चुनाव कर लिया है, सम्राट ! वह तपोवन मुझे पुकार रहा है, बिदा दीजिये !

बिम्बसार—एक बार फिर सोचो युवक !

सिद्धार्थ—सोच चुका हूँ, कितनी बार सोच चुका हूँ ! नाव धार में डाल चुका, अब उसकी लहरियों पर खेलूँगा या सदा के लिए अतल में विलीन......मैं चला, सम्राट !

बिम्बसार—न रुकें, तो जाइये ! किन्तु साधना की प्राप्ति के बाद इधर ही से लौटने का वचन देते जाइये।

सिद्धार्थ—तथास्तु !

३

[तपोवन: अस्थिकंकाल बने सिद्धार्थ भावावेश में]

सिद्धार्थ—तपोवन, तपोवन ! तपस्या, तपस्या ! कैसी तपस्या—कितनी तपस्या !...भद्रजित, उफ......

कोई पंछियों की तरह गिरे अन्न चुन कर खा रहा; कोई मृगों की तरह घास-पात पर जी रहा; कोई बाँबियों में घुसा साँप की तरह हवा पर ही गुज़ारा कर रहा !

कोई दिनरात पानी में घुसा मछलियों और कछुओं से अपनी चमड़ी नुचवा रहा; कोई आग के घेरे में अपने को रखे सारे शरीर को झुलसाये जा रहा !

कोई बारह बरसों से खड़ा-खड़ा; कोई एक जगह इस तरह बैठ गया कि उसके चारों ओर चीटियों ने मिट्टी के अम्बार लगा दिये......

उफ भद्रजित ! तपस्या, तपस्या ! तपोवन, तपोवन !

अराड-मुनि का उपदेश ! तप करो, तप करो, तप करो ! मैंने क्या नहीं किया ? छः वर्षों से तो इस आसन पर बैठा रहा हूँ। अन्न छोड़ा, फल छोड़े, जल तक छोड़ा ! शरीर से बल जाता रहा, आँख से ज्योति जाती रही और मेधा......

हाँ, हाँ, मेधा भी जाती रही मेरी !

कल मैं किस तरह मूर्च्छित होकर गिर गया था, भद्रजित !

नहीं, नहीं, ज्ञान की प्राप्ति का यह मार्ग नहीं हो सकता ! भद्र-जित, तुम बोलते क्यों नहीं ?

भद्रजित—जी, आज्ञा ?

सिद्धार्थ—आज्ञा ? आज्ञा कुछ नहीं भद्रजित ! ज्ञान की उपलब्धि इस मार्ग से हो नहीं सकती ! दुर्बल उसे प्राप्त नहीं कर सकता ! जो भूख प्यास, थकावट से परीशान है, अस्वस्थ-चित्त है, असुखी है, उसे ज्ञान की उपलब्धि हो नहीं सकती भद्रजित !

भद्रजित—यह आप क्या कह रहे हैं ?

सिद्धार्थ—वही कह रहा हूँ, जिसका अनुभव इतनी तपस्याओं के बाद प्राप्त किया है। दुर्बल शरीर, अस्वस्थचित्त और अशांत मन से ज्ञान की उपलब्धि हो नहीं सकती, भद्रजित ! जो तपस्या मेधा को कुंठित करे, शरीर को अशक्त बना दे, मन को विह्वल कर दे—वह तपस्या तपस्या नहीं है। भद्रजित, तुम्हारे अन्य चारों साथी कहाँ हैं ?

भद्रजित—कल से आपका जो रुख हो रहा है, उसे देखकर वे परीशान हैं !

सिद्धार्थ—परीशान ! वे परीशान हैं ? तो मैं भी कम परीशान नहीं हूँ, भद्रजित ! घर छोड़ा, राज छोड़ा, पत्नी छोड़ी, पुत्र छोड़ा – उफ, मैं भी कम परीशान नहीं हूँ, भद्रजित !

(संगीत की स्वर-लहरी सुनाई पड़ती है)

तथागत :

ओहो, भद्रजित ! सुना तुमने वह गाना ? वह गाना— 'वीणा के तार को इतना मत ऐंठो कि वह टूट जाय और न इतना ढीला करो कि जिससे स्वर ही नहीं निकले !' यह कौन गा रहा है ? कहाँ गा रहा है ? 'वीणा के तार को इतना मत ऐंठो......'बस-बस, ज्ञान का मार्ग यही है भद्रजित ! ज्ञान का मार्ग—मध्य का मार्ग—मज्झिम निकाय ! 'वीणा के तारों को इतना मत ऐंठो'—भद्रजित, तुम जाओ, अपने साथियों से कह दो—सिद्धार्थ ने ज्ञान का मार्ग पा लिया ! हाँ, पा लिया ! तुम जाओ और मैं निरंजना के तट की ओर चला भद्रजित, जहाँ से यह स्वर्गीय संगीत प्रवाहित हो रहा है......

(फिर संगीत की स्वर-लहरी)

अहा, कैसा गाना ! ओह, कैसा गाना ! ठहरो गायक, ठहरो; मैं आया, मैं आया ! भद्रजित, तुम खड़े क्यों हो, जाओ !

देख रहा हूँ तुम्हारा चेहरा भद्रजित ! वह कह रहा है— सिद्धार्थ ढोंगी है ! सिद्धार्थ तपस्या से गिर गया ! एक राज-कुमार से तपस्या सध नहीं सकती ! पाखंडी, ढोंगी—मैं देख रहा हूँ, तुम्हारा चेहरा यही कह रहा है भद्रजित ! उससे घृणा बरस रही है—जाओ, जाओ !

(भद्रजित जाता है, सिद्धार्थ का ध्यान संगीत की ओर है)

गायक, ठहरो, ठहरो ! मैं आया गायक, आया ! निरंजना,

बेनीपुरी :

निरंजना ! धन्य तुम्हारा तट, धन्य यह गाना ! मज्झिम निकाय, मध्यम मार्ग, बीच की राह ! (मुड़कर) भद्रजित......

(उसे नहीं पाकर)

ओहो, अच्छा हुआ कि तुम चले गये, भद्रजित ! सिद्धार्थ अकेले ज्ञान की खोज में निकला था ; वह अकेले ही ज्ञान प्राप्त करेगा—राह मिल गई, फिर मंज़िल कितनी दूर ? वह...... वह मंज़िल, वह......

४

[बोधिवृक्ष के नीचे : दूर पर सुजाता अपनी सखी के साथ]

सुजाता—आज यह शुभ दिन भी आया, पूर्णे !

पूर्णा—जिसका सौभाग्य चमकता है, उसका हर तरह से चमकता है, आर्ये ! कितना सुन्दर पति मिले आपको, अब बरस लगते-न-लगते यह सुन्दर पुत्र !

सुजाता—किन्तु इन वरदानों के लिए कितनी तपस्या की है मैंने ! आखिर इस एक थाल खीर की ही तो बात सोचो।

पूर्णा—इसमें तो आपने हद कर दी। एक हजार गायों को जेठीमध के जंगल में चरा कर उसके दूध से पाँच सौ गायों को पालना; फिर उन पाँच सौ गायों के दूध से ढाई सौ गायों को, यों ही पालते-पालते अन्ततः पाँच गायों के दूध से यह खीर

बनाई है आपने। वह देवता भी धन्य होंगे, जो इन्हें ग्रहण करेंगे !

सुजाता जो मेरा प्रेम सत्य होगा, तो देवता को आज प्रत्यक्ष भोजन ग्रहण करना पड़ेगा, सखि !

पूर्णा—ऐसा तो कभी नहीं हुआ है, आर्ये !

सुजात—जो कभी नहीं हुआ, वह कभी हो भी नहीं सकेगा, ऐसा सोचना क्या सही है ? दुनिया में नित्य नई चीजें होती रहती हैं, पूर्णे !

पूर्णा—देखिये तो आर्ये, उस तरफ वह क्या प्रकाश हो रहा है ?

सुजाता—हाँ, संध्या की इस धूमिल बेला में, मालूम होता है, जैसे कोई प्रकाश-पुंज वहाँ उद्दीप्त हो रहा है !

पूर्णा—प्रकाश-पुंज ! हाँ, हाँ, प्रकाश-पुंज ही तो। देवि, देवि, आपके देवता, देखिये, वह प्रत्यक्ष आपकी प्रतीक्षा में हैं। आपने जो अभी कहा, वह होकर रहा !

सुजाता—कोई तपस्वी होंगे शायद ! किन्तु शरीर से कैसी ज्योति फूट रही है ! अग्नि में तपाये जाकर सोना जैसे कुंदन बन गया हो ! अभी शायद निरंजना से स्नान कर लौटे हैं। सारे शरीर पर पानी की बूँदे चमचम कर रही हैं !

पूर्णा—नहीं, आर्ये, यह तपस्वी नहीं, यह देवता हैं, आपके आराध्य देवता ! मेरी तो आँखें झिप रही हैं ! मैं आगे

बढ़ नहीं सकती; जाइये, अपने देवता को इस पवित्र पायस का भोग लगा आइये !

सुजाता—नहीं-नहीं, तुम भी चलो, पूर्णे !

पूर्णा—मैं जा नहीं सकती आर्ये ! उस ज्योति से मेरी आँखें चकाचौंध में पड़ जाती हैं । अब यहाँ से एक कदम भी मैं नहीं बढ़ूँगी ! जिसका देवता होता है, उसकी ज्योति वही सम्हाल पाता है, आर्ये ! यही कहा जाता है, यही होता है !

सुजाता—तू पगली है, अच्छा, यहाँ से भागना मत; मैं तुरत आई ।

(ध्यानस्थ सिद्धार्थ के निकट पहुँच कर)

देव, यह मेरा भाग्य कि आप यहाँ सशरीर बैठे हैं ! जिन्दगी भर पुजारिन बनी रही; तब कहीं आपने आज दर्शन दिये । लीजिये, यह श्रद्धा की खीर !

देव, आप बोल क्यों नहीं रहे ? क्यों यह बंद आँखें ? यदि इतनी कृपा की, तो यह कृपा भी कर दिखाइये ! इन नेत्रों को खोलिये; इस खीर को सद्गति दीजिये ।

आप हिल भी नहीं रहे । क्यों देव ! देवता या तो अदृश्य रहेंगे, या प्रतिमा बनेंगे ? क्या यही विधान है ? मैं देव-विधान नहीं तोड़ना चाहती हूँ, मेरे देव ! किन्तु यह विधान बुरा है । अदृश्य से प्रत्यक्ष हुए; तो आँख, मुँह और हाथ को काम करने दीजिये ।

तथागत :

इन आँखों को मंगल बरसाने दीजिये, मुँह को आशीर्वचन देने दीजिये और हाथों को अर्घ्यग्रहण के लिए बढ़ाइये ! मैं आपके चरणों पर गिरी हूँ, मेरे देवता !

(सिद्धार्थ का ध्यान टूटता है)

सिद्धार्थ—देवि, मैं देवता नहीं ! मैं मनुष्य हूँ ; किसी चीज की खोज में हूँ ।

सुजाता—मैं आप से बहस नहीं करना चाहती, देव ! आप जो कुछ हैं, मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ ! अहा, मेरा भाग्य ! ग्रहण कीजिये यह थाल !

सिद्धार्थ थाल ? स्वर्ण-थाल का भोजन तो मैंने कब न छोड़ दिया भद्रे !

सुजाता—देवता को कब किस चीज की कमी । किन्तु भक्त का आग्रह भी कोई चीज है, देव !

सिद्धार्थ—मैं फिर कह रहा हूँ, मैं देवता नहीं; मैं किसी चीज की खोज में हूँ देवी !

सुजाता—यही सही । अगर यही बात हो तो जिस तरह मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ, आपका मनोरथ भी पूरा हो, देव !

सिद्धार्थ—'आपका मनोरथ पूरा हो' ! यह तू क्या कह रही देवि ! क्या सच ? अहा, यही होता !

सुजाता—जो होता है, यों ही अचानक होता है, देव ! जब

बादल बहुत घना होता है, बिजली आप-आप चमक उठती है—एक के बाद दूसरी !

सिद्धार्थ—देवि, आपका उपहार स्वीकार ! यह खीर बुद्धत्व की जननी सिद्ध हो !



[बोधि-प्राप्ति : बोधिवृक्ष-तले आवेश में सिद्धार्थ]

सिद्धार्थ—उफ, यह क्या स्वप्न था ? स्वप्न या सत्य ? सत्य या स्वप्न ? पहले मालूम हुआ, सारा संसार सुगन्ध से भर गया—सुगन्ध से, फिर संगीत से। तब सारे आसमान में इन्द्रधनुप ही इन्द्रधनुष, सारी पृथ्वी पर कमल ही कमल ! क्या यह स्वप्न था ? या सत्य ?

अरे, वह मधुर शिंजिनी; वह मधुमय स्वर-लहरी। वह छूम छन्नन, फिर भुज-वलय-वेष्ठन ! उफ, क्या सत्य था, या स्वप्न ?

कोई चीज हृदय पर आई; टकराई। सारे शरीर में रोमांच, सिहरन ! 'सिद्धार्थ, यह मार का पुष्प-शायक है, सम्हलो'—यह कौन बोला ? मार-मार, तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते मार'।

किन्तु यह तो स्वप्न था ! क्या यह सत्य था ?

पलक लगते, पल में कैसा पट-परिवर्तन !

आसमान में उल्कायें दौड़ने लगीं; दिशाओं में नागिनें फुफकारने लगीं; वह ग्रह टूटे, वह वज्र गिरा, वह धरती डोली—भूकम्प ! सारे भूमण्डल को कोई गेंद-सा उछाल रहा हो जैसे। कुछ भी स्थिर नहीं, कोई भी स्थिर नहीं। 'किन्तु सिद्धार्थ, तुम्हारा आसन नहीं डोलना चाहिए—' क्या यह देवता बोले ?

गजराजों ने सूँड़ से लपेटा; वाराहों ने दाँत पर उछाला, वज्रदंष्ट्रा मृगेन्द्रों ने जबड़ों के नीचे दबाया—मार, मार ! यह सब तेरी माया थी मार, किन्तु सिद्धार्थ का तुम कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे मार !

फूल से शूल पर, शूल से फूल पर ; कभी स्वर्ग के आनन्द-हिल्लोल पर; कभी नरक के रौरव-ज्वाल में ; आग से पानी में, पानी से आग पर !

कभी नसों में सनसनी, गुदगुदी; कभी बिच्छुओं के डंक, विद्युत शलाका की तड़प !

उफ, अरे यह स्वप्न था या सत्य ? सत्य था या स्वप्न ? किन्तु सिद्धार्थ तो इस प्रतिज्ञा के साथ बैठा था, इस अश्वत्थ तले, इसे ही साक्षी रखकर—

'चाहे मेरी चमड़ी, नसें और हड्डी ही क्यों न बाकी रहें, चाहे शरीर, मांस, रक्त क्यों न सूख जायँ—लेकिन तो भी

सम्यक सम्बोधि प्राप्त किये बिना इस आसन को नहीं छोड़ूँगा, नहीं छोड़ूँगा !'

मार, मार ! तुमने एक भी प्रयत्न नहीं छोड़ा; किन्तु क्या तुम मेरा कुछ बिगाड़ सके ?

अहा, अहा ! वह पूरब में किरणें छिटक रही हैं। निशा दूर हुई, अंधकार दूर हुआ। स्वप्न भागा; सत्य जागो ! सत्य जागो ! उठो, सिद्धार्थ, उठो ! कहाँ हैं अराड़ मुनि, कहाँ हो भद्रजित, कहाँ हैं तुम्हारे चारो साथी ? आओ, देखो, सिद्धार्थ ने बोधि प्राप्त कर ली ! सिद्धार्थ ने बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का मार्ग जान लिया। श्रोतिय की आठ पुल्लियों से बना आठ कोण का मेरा यह आसन ! बुद्धत्व के आठ स्तम्भ—सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक जीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि !

आओ—देखो। ओ, कहाँ हैं अराड़ मुनि ? कहाँ हो भद्र-जित ? आइये, आओ—सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त कर लिया ! बुद्धत्व प्राप्त कर लिया। बुद्धत्व का अष्टांग मार्ग, मध्यम मार्ग—बीच का रास्ता—मज्झिम निकाय। आओ, यह मार्ग देखो !

देखो, अब किरणें सारी पृथ्वी को जगमग करती जा रही हैं। कहाँ गई निशा, कहाँ गया अंधकार, कहाँ गया स्वप्न ? सत्य प्रकाशित हुआ, ज्ञान प्रभासित हुआ। मानवो, बढ़ो ज्ञान की ओर, निर्वाण की ओर !

६

[यशोधरा का स्वप्न : कपिलवस्तु का राजप्रासाद]

यशोधरा—परिचारिके, परिचारिके ! माताजी को बुलाओ परिचारिके !

परिचारिका—जो आज्ञा रानीजी, किन्तु आज आपमें इतनी प्रसन्नता क्यों पा रही हूँ ? कितने वर्षों के बाद......

यशोधरा—हाँ-हाँ, कितने वर्षों के बाद ! कितने वर्षों के बाद उन्हें देखा है परिचारिके !

परिचारिका—उन्हें ! क्या राजकुमार को ? उन्हें कहाँ देखा है रानीजी ? अहा......

यशोधरा—माताजी को बुलाओ परिचारिके, माताजी को ! अभी-अभी देखा है, वह आ रहे हैं।

(प्रजावती का प्रवेश)

प्रजावती—कौन आ रहा है बेटी, यह भोर-भोर क्या सुन रही हूँ ? क्या सचमुच मेरा बेटा आ रहा है ?

यशोधरा—हाँ, सचमुच वह आ रहे हैं माताजी ? मैंने अभी-अभी सपना देखा है, वह आ रहे हैं !

प्रजावती—सपना देखा है ? सपने से मैं बहुत घबराती हूँ बेटी ! बहिन माया ने भी एक सपना......

यशोधरा—लेकिन मेरा सपना सत्य होकर रहेगा माताजी, वह जरूर आयँगे। मैंने देखा है, एक विशाल उजला हाथी...

प्रजावती—उजला हाथी ? माया ने भी......

यशोधरा—हाँ-हाँ, माताजी, देखा, एक बहुत विशाल उजला हाथी है, उसके आठ दाँत हैं, सुफेद - सुफेद, सुन्दर - सुन्दर ! वह अपनी खूबसूरत सूड़ को हवा में उछालता न ज्यादा तेजी से, न बहुत धीरे-धीरे, बल्कि मद्धिम चाल से चला आ रहा है और उसके ऊपर आर्यपुत्र......

प्रजावती—बेटी यशोधरे ! हाथी का सपना मत सुनाओ, हाथी का सपना हमारे लिए अच्छा नहीं होता !

यशोधरा—अच्छा नहीं होता ? क्या इससे भी अच्छी कोई चीज हो सकती है माँ कि आर्यपुत्र उस विशाल हाथी पर अपनी राजधानी में प्रवेश कर रहे हैं और सारी राजधानी उनके स्वागत को उमड़ रही है। आर्यपुत्र के मुखमण्डल से एक विचित्र आभा प्रस्फुटित होकर एक विशाल वृत्त बना रही थी माँ, जिस वृत्त में मालूम होता था सारा भूगोल, खगोल तुच्छ कणिकाओं की तरह चक्कर काट रहे हों ! माताजी, माताजी, अफसोस आपने यह दृश्य नहीं देखा ! मैं आपको किस तरह समझाऊँ......

प्रजावती—बेटी, फिर कहती हूँ, हाथी का सपना न सुनाना। यह हमारे लिए अच्छा नहीं होता। इसी हाथी के सपने ने

तथागत :

हमसे सिद्धार्थ छीना, अब राहुल पर ही हमारी सारी आशा केन्द्रित है बेटी !

(राहुल का प्रवेश)

राहुल—माँ, माँ !

यशोधरा—बेटा, बेटा, मैं समझ गई बेटा, तू क्या पूछ रहा है ? जब कभी अपने दोनों हाथ उठाकर मुझसे लिपटते हुए मासूम आँखों से तू मेरी ओर देखता है, मैं समझ जाती हूँ तुम मुझसे क्या पूछेगा ? 'पिताजी कब आयँगे, पिताजी कब आयँगे'—अब यह रट तुम्हें नहीं लगानी होगी बेटा ! अब तेरे पिताजी आ रहे हैं।

राहुल—(आनन्द से) माँ-माँ !

यशोधरा—कैसी आँखें चमक गईं तेरी ? कैसा चेहरा खिल उठा तेरा ? तेरे पिताजी आ रहे हैं, मेरे आर्यपुत्र आ रहे हैं। माताजी का प्यारा......(प्रजावती से) माताजी, आप क्यों न खुश हो रही हैं माताजी ? ओहो हो—आपकी आँखों में यह आँसू......

प्रजावती—राहुल, बेटा राहुल ! आ बेटा, तुझे गोद लूँ, तेरी बलैया लूँ। मेरा जो बेटा गया, वह लौट नहीं सकता। तेरे रूप में जो नया बेटा मुझे मिला है, हे भगवान...! यशो-धरे, बेटी, तुमने यह बुरा सपना देखा !

यशोधरा—माताजी, इसके बढ़कर अच्छा कोई दूसरा सपना हो नहीं सकता। वह आ रहे हैं, आर्यपुत्र आ रहे हैं। आठ दाँत

वाले मद्धिम मस्तानी चाल से चलनेवाले श्वेत गजराज पर आ रहे हैं। उनके मुखमंडल से आभा फूट रही है। उस आभा से वृत्त बन रहा है, जिसमें सारा भूगोल, खगोल तुच्छ कणिकाओं की तरह भँसते-तैरते से दीख पड़ते हैं। माताजी, इससे बढ़कर सुन्दर कोई सपना हो नहीं सकता है।

राहुल—(उदासी के स्वर में) माँ-माँ !

यशोधरा—उदास मत हो बेटा। दादी की बातों में न आ, खुश हो; उछलो, कूदो, सारे राजमहल के कोने-कोने को, सारी राजधानी की गली-गली को अपने कलरव से गुँजा दो कि तुम्हारे पिताजी आ रहे हैं। आठ दाँत वाले मद्धिम-मस्तानी चाल से चलने वाले गजराज पर तुम्हारे पिताजी......हाँ - हाँ जाओ—उछलो, कूदो, खुश हो !

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय

१

[पंचवर्गीय भिक्षु : ऋषि पत्तन मृगदाव]

बुद्ध—मैं देख रहा था भद्रजित, ज्यों-ज्यों मैं तुमलोगों के निकट पहुँच रहा था, त्यों-त्यों तुम्हारी आँखों में आशंका, उपेक्षा, घृणा सघन होती जा रही थी।

भद्रजित—हमें लज्जित न कीजिये, भन्ते !

बुद्ध—मुझे वह दिन भूला नहीं था, जब मैं उग्र तपस्या को त्यागकर खानेपीने लगा तो तुमलोगों ने कटु वचन कहे, गालियाँ दीं और अभिशाप देकर चलते बने। तुमलोगों ने मुझे छोड़ दिया, किन्तु मैंने ज्ञान के अनुसंधान को न छोड़ा और अन्ततः

सम्यक सम्बोधि प्राप्त करके ही रहा। किन्तु तुम तो समझते थे. सिद्धार्थ पतित......

भद्रजित—हाँ भन्ते ! यह लज्जा की बात है, किन्तु सत्य है। आपको देखकर आज भी हमारी पुरानी घृणा सौगुने वेग से जाग उठी थी और हमने यह तय कर लिया था कि आपके निकट आ जाने पर भी हम न उठेंगे, न अभिवादन करेंगे, यहाँ तक कि आसन तक न दी देंगे। किन्तु ज्यों-ज्यों आप नजदीक आते गये......

बुद्ध—हाँ, आदमी ज्यों-ज्यों सत्य के नजदीक आता है, त्यों-त्यों अविद्या हटती जाती है, अन्धकार दूर होता जाता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ था भद्रजित ! प्रकाश के पहले अंधकार भीषणतम हो उठता है। बोधि-प्राप्ति के पहले मार के क्या-क्या न प्रहार सहने पड़े मुझे। किन्तु उस प्रहार के बाद तथागत......

भद्रजित—तथागत !

बुद्ध—हाँ भद्रजित, तथागत। यह जो तुम्हारे सामने खड़ा है वह शाक्यकुल का सिद्धार्थ गौतम नहीं है। वह जो टलहा था, मार की भट्ठी में जलकर खाक हो गया। यह जो तुम्हारे सामने खड़ा है—यह तथागत है, यथार्थ सत्य है, खरा सोना है। संसार में जिसे अब तक किसीने न प्राप्त किया था, मैंने उस सत्य को प्राप्त कर लिया है भद्रजित !

भद्रजित—भन्ते ! आपसे बिछुड़कर हमलोगों ने कौन-कौन सी तपस्यायें न कीं; किन्तु हमें हमेशा ऐसा बोध होता रहा कि हम जहाँ से चले थे, घूमफिर कर फिर वहीं पहुँच गये हैं। कभी-कभी प्रकाश की जो किरणें दिखीं, वे तुरत सिद्ध हुईं जुगनू की ज्योति। सत्य का सूर्य, आह ! न जाने हमसे कहाँ छिपा हुआ......

बुद्ध दो अन्तों से बचकर ही सत्य को प्राप्त किया जा सकता है, कौण्डिन्य ! शरीर को सुख से लपेटे रहना और शरीर को दुख में तपाना, दोनों ही अनार्य हैं, वर्ज्य हैं। विषयों की आसक्ति ज्ञान को जिस तरह ढँक देती है, तप की दुर्बलता और शक्तिहीनता उसे ज्यादा ढँक लेती है। सत्य का रास्ता इन दोनों के बीच में है। मध्यम प्रतिपद—मज्झिम निकाय—मध्य का मार्ग ही सत्य का मार्ग है। यही आर्य मार्ग है। यही बुद्धत्व का मार्ग है। यही मार्ग आँख देनेवाला, ज्ञान देनेवाला, शान्ति देनेवाला, सम्बोधि देनेवाला, निर्वाण देनेवाला है।

भद्रजित—मध्यम प्रतिपद ! मज्झिम निकाय ! मध्य का म ार्ग ! यही सत्य का मार्ग है, बुद्धत्व का मार्ग है......

बुद्ध—हाँ-हाँ कौण्डिन्यो ! मध्य का मार्ग ही सत्य का मार्ग है। यही आर्य मार्ग है, यही आर्य आष्टांगिक मार्ग है। आष्टांगिक मार्ग यानी अपनी नजर ठीक रखो, अपने संकल्प ठीक रखो; मुँह से ठीक - ठीक बोली गई वाणी

निकले, कर्म भी ठीक ही ठीक हों; आजीविका ठीक रहे—ठीक तरह से प्रयत्न होते चलें। फिर सतत जागरुकता आयगी और अन्ततः सम्यक समाधि प्राप्त होकर रहेगी। फिर ज्योंही सम्यक समाधि प्राप्त हुई, बीमारी, बुढ़ापे और मृत्यु से छुटकारा मिला। जन्म दुख है बुढ़ापा दुख है; बीमारी दुख है, मृत्यु दुख है। अप्रियों का संयोग दुख है, प्रियों का वियोग दुख है। इच्छित वस्तु का न प्राप्त होना दुख है और उनका खोना भी दुख है। दुख आर्य सत्य है और आर्य सत्य है इन दुखों का कारण। दुखों का कारण क्या है: तृष्णा! कामतृष्णा, भव-तृष्णा, विभवतृष्णा। और, जिस तरह ये सत्य हैं, उसी तरह उनका निरोध भी सत्य है। सभी प्रकार की तृष्णाओं से विराग, सभी प्रकार की उत्तेजनाओं पर विजय, यह भी आर्य सत्य है, साध्य है। इस साध्य तक पहुँचने के लिए आष्टांगिक मार्ग है। इस मार्ग को न पहले किसी ने देखा था, न किसीने सुना था। तथागत ने इसे प्राप्त किया है और तथागत का आदेश है इसपर बढ़ो, चलो......

भद्रजित—जो आज्ञा शास्ता!

बुद्ध—तो तुम्हीं पाँचों इस धर्म के अग्रदूत हुए—पंचवर्गीय भिक्षु के नाम से संसार तुम्हें अवगत करेगा।......और, वहाँ, देखो तो, वह कौन आ रहा है?

भद्रजित—ओहो, वह कौन आ रहा है? रत्नों से जड़ा

तथागत :

सुनहला परिधान, सिर पर रत्नों की झालर वाली पगड़ी, पैर में सोने की पादुकाएँ! वारानसी का कोई श्रेष्ठि तो नहीं?

(श्रेष्ठिपुत्र यश का आगमन)

यश—मैं श्रेष्ठि-पुत्र यश हूँ, महात्मन ! आपकी सेवा में आया हूँ। कुछ ऐसी घटनाएँ हुई हैं कि चित्त कुछ उद्विग्न...

भद्रजित—उद्विग्न चित्तों को शान्ति देने के लिए ही तथागत का आगमन हुआ है, श्रेष्ठिपुत्र ! तथागत की कृपा से हमारी आँखें आज खुली हैं, अब संसार की आँखें भी खुलें।

यश—अब तक इन आँखों के धोखे में ही रहा हूँ, महात्मन् ! बहुत देखे, बहुत सुने, बहुत भोगे। तीन ऋतुओं के लिए तीन कोठियाँ बनवाईं। ग्रीष्मावास, वर्षावास, हेमन्तावास। भोग के सभी सामान इकटठे किए। किन्तु जितना पीते गए, प्यास बढ़ती गई। अब आपकी शरण में आया हूँ, भिक्षुवर ! संकोच हो रहा था......

बुद्ध—तुम्हें संकोच हो रहा था कि इस वेश में ऋषि पत्तन में प्रवेश उचित है या नहीं? किन्तु भिक्षुवेश धर्म का कारण नहीं है यश ! जो सब जीवों को समान भाव से देखता है और जिसने शम एवं विनय द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, वह आभूषण पहन कर भी धर्म में विचरण करता है, श्रेष्ठिपुत्र !

यश—साधु, महात्मन, साधु !

बुद्ध—साधु नहीं, सत्य कहो। जो शरीर से घर को छोड़ता है, चित्त से नहीं और जो काम के अधीन है, वह बन में रहने पर भी गृहस्थ है, गृहस्थों से भी हीन है। किन्तु जिसका शरीर भले ही कामकाज में लगा हो, किन्तु जिसका चित्त ज्ञान की ओर प्रवृत्त है, वह घर में रह कर भी बनवासी है, संन्यासी है, पूज्य है, वन्द्य है। श्रेष्ठिपुत्र, जिसने सिद्धि पाई वह मुक्त—चाहे वह घर में रहे, चाहे बन में।

यश—आपकी शरण में हूँ देव! कोई शुभ तिथि बताइये, जब आपसे प्रव्रज्या ग्रहण करूँ।

बुद्ध—निर्वाण के लिए कोई समय निश्चित नहीं है और न कोई तिथि शुभ या अशुभ है। यश! यहाँ आओ और सौभाग्य प्राप्त करो!

२

[धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन : भिक्षुओं के समक्ष भगवान बुद्ध]

बुद्ध—चरहे भिक्खव, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय! भिक्षुओ! विचरण करो, भ्रमण करो, बहुतों के सुख के लिए, बहुतों के हित के लिए। लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, विचरण करो, भ्रमण करो, आगे बढ़ो!

तथागत :

भिक्षुओ, जो आदि में कल्याणकारक है, मध्य में कल्याण-कारक है; अन्त में कल्याणकारक है—इस धर्म का उपदेश करो। अर्थ सहित, व्यंजन सहित, अमिश्र, परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो। बहुतों के सुख के लिए, बहुतों के हित के लिए विचरण करो, भ्रमण करो, आगे बढ़ो।

संसार में ऐसे प्राणी भी हैं, जो अदोष हैं, अल्प दोष हैं। जो भटक गये हैं या भटक रहे हैं तो सिर्फ इसलिए कि धर्म का, सत्य का, ज्ञान का संदेश उनके निकट तक नहीं पहुँच सका। भिक्षुओ, धर्म के न श्रवण करने से उनको हानि हो रही है। जाओ, उन्हें धर्म का संदेश सुनाओ। धर्म का संदेश सुनकर वे धर्म पथ पर आचरण करें, ज्ञान के मध्यम मार्ग पर विच-रण करें—इसके लिए प्रयत्न करो, आगे बढ़ो, बढ़ चलो, भ्रमण करो, विचरण करो !

कभी दो भिक्षु एक साथ न जाना। कभी दो भिक्षु एक पथ से न जाना। कभी एक घर का भोजन न करना। कहीं एक रात से ज्यादा न बिताना। बहुतों के सुख के लिए, बहुतों के हित के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, हित के लिए, सुख के लिए, भिक्षुओ भ्रमण करो, विचरण करो, बढ़ते चलो !

मैं ही प्रव्रज्या दूँगा, इसकी प्रतीक्षा मत करो। जहाँ भी योग्य सदाचारी व्यक्ति मिले, उसे तुम प्रव्रजित करो !

इस ऋषिपत्तन मृगदाव में, जहाँ मासूम हिरनें विचर रही हैं, जहाँ सुन्दर पंछी किकोल कर रहे हैं, जहाँ से गंगा का कलरव सुनाई पड़ता है, जहाँ से बारानसी के सुनहले गुम्बद दिखाई पड़ते हैं, ऐसे पवित्र स्थान में हमने जिस धर्मचक्र का प्रवर्त्तन किया है, वह हमेशा घूमता रहे, चलता रहे, उसे कोई उलट न सके, इसलिए हे भिक्षुओ! भ्रमण करो, विचरण करो—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय !

तथागत का यह धर्मचक्र ! शील इसके आरे हैं, शम और विनय इसकी पुट्ठियाँ हैं, इसमें बुद्धि की विशालता है, स्मृति और मति की स्थिरता है, लज्जा ही इसकी नाभि है। गंभीरता के कारण यह धर्मचक्र उलटाया नहीं जा सकता। इसलिए हे भिक्षुओ, इस धर्मचक्र की क्षिप्र गति के अनुसार ही भ्रमण करो, विचरण करो, बढ़ते चलो !

चरहे भिक्खव, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ! बहुतों के सुख के लिए, बहुतों के हित के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, भिक्षुओ, विचरण करो, भ्रमण करो, आगे बढ़ो, बढ़ते चलो !

३

[सब जीवों पर दया : राजगृह का यज्ञस्थल]

पुरोहित—चांडाल, तुमने देर कहाँ लगा दी ? कहाँ रहे अब-तक ? क्यों देर कर दी इतनी ?

गड़ेरिया—मैं दोषी नहीं हूँ पुरोहित महाराज, मैं दोषी नहीं हूँ ! मैं तो हुक्म पाते ही ढोरों को लेकर चला......

पुरोहित—तो क्यों देर हुई ? कहाँ देर हुई ? चांडाल, तुमने यज्ञ में देर कर दी ?

गड़ेरिया—देर करूँ और मैं ? यह ढिठाई मुझसे नहीं हो सकती पुरोहितजी, नहीं ! मैं तो एक पागल के पाले पड़ गया था ! हाँ-हाँ, वह पागल था !

पुरोहित—पागल ?

गड़ेरिया—जरूर ही वह पागल था पुरोहितजी ! पूछने लगा—'कहाँ जा रहे हो ? क्यों इतनी तेजी से इन ढोरों को हँका रहे ह ? रह-रहकर इन्हें पीट देते हो ? इन निरीह जानवरों को क्यों पीट रहे हो ? आह, आह !' हाँ-हाँ, उसने तो आह-ऊह का तूमार खड़ा कर दिया था। कभी इस मेंड़ की पीठ सहलाता, कभी उस बकरे की टाँग। और, हद हो गई महाराज तब, जब एक लँगड़े बकरे को उठाकर उसने कंधे पर रख लिया।

पुरोहित—तब तो सचमुच पागल था वह !

गड़ेरिया—वह आपको भी अंटसंट सुनाता था पुरोहित-जी ! कहता था, कैसा है वह ब्राह्मण, जो पशुओं पर यह क्रूरता करवाता है !

पुरोहित—मेरे सामने आता तो बता देता कि मैं कैसा ब्राह्मण हूँ ! दुष्ट ने देर करा दी......

गड़ेरिया—तो क्या वह आ नहीं रहा होगा ? मेरी लाठी से जिसका सर फूट गया था, उस बकरे को रक्त धोने के लिए वह झरने के निकट ले गया है और कह गया है—जा, पुरोहित को कह देना, मैं इसे लिये आ रहा हूँ ! अरे, वह देखिये, वह आ ही पहुँचा !

(बुद्ध का प्रवेश : पुरोहित एकटक देखता है, बुद्ध मुस्कुराते हैं)

बुद्ध—निरीह प्राणियों के घावों को धोने के लिए ही तथागत का इस लोक में आगमन हुआ है पुरोहित ! बकरे का ज़ख्म धो चुका, अब तुम्हारा ज़ख्म......

पुरोहित—पागल, सम्हल कर बोल। मैं कोई गड़ेरिया नहीं हूँ। इस यज्ञस्थल में......

बुद्ध—पागल सम्हल कर नहीं बोलते पुरोहित ! पागल सम्हल कर बोलें, सम्हल कर चलें, तो फिर हमें यह दशा क्यों देखनी पड़े ? क्यों यज्ञस्थल को वधस्थल बनाया जाय ? क्यों वधस्थल को यज्ञस्थल कहा जाय ?

पुरोहित—अरे, तू तो ज्ञान का ढोंग भी रच रहा है। वेष भी क्या खूब बना रखा है तूने? किन्तु, देवताओं के लिए किये जानेवाले इस यज्ञ में विघ्न डालने के अपराध में......

बुद्ध—देवता इतना क्रूर नहीं हो सकते पुरोहित, कि वे निरीह प्राणियों की जान के गाँहक बन जायँ।

पुरोहित—देवता बलि से संतुष्ट होते हैं।

बुद्ध—निस्सन्देह! निस्सन्देह ही देवता बलि से प्रसन्न होते हैं; किन्तु बलि निरीह प्राणियों की नहीं, हमारे-तुम्हारे ऐसे...

पुरोहित चुप रह पागल, चुप रह! अभी बलि का खांड़ नहीं देखा है! देख तो यह (खाँड़ा दिखाता है)......

बुद्ध—यह! यही? पुरोहित, पुरोहित! यह तो बच्चों का खिलौना है। तथागत ने मार के ऐसे अस्त्र-शस्त्र देखे हैं......

पुरोहित—(साश्चर्य) तथागत! मार के अस्त्रशस्त्र! यह तू क्या बोल रहा है पगले!

बुद्ध—तुम्हारे सामने तथागत खड़े हैं और तुम पहचान नहीं रहे पुरोहित! हाँ, तथागत, जिसने मार पर विजय प्राप्त की, जिसने तृष्णादि पर विजय प्राप्त की, जिसने ज्ञान प्राप्त किया, बुद्धत्व प्राप्त किया।

पुरोहित हट, हट, तू अवश्य पागल है। देख, देख के राजा यज्ञ-मंडप में आ ही पहुँचे—हट!

बुद्ध—हट? जिसे मार न हटा सका, उसे तुम हटाओगे? राजा को आने दो, मैं उसीसे भेंट करने आया......

पुरोहित—राजा की शान के खिलाफ इस तरह का सम्बोधन मत कर, भिक्षु !

बुद्ध—तथागत के सामने सभी शिशु हैं, अज्ञानी हैं, तथागत उन्हें ज्ञान देंगे......

(राजा बिम्बसार का प्रवेश)

बिम्बसार—तुम ? आप ? मालूम होता है तुमको...... आपको......कहीं......

बुद्ध—तुम, आप, सब भ्रम है; भ्रम है मगध सम्राट !

बिम्बसार—मालूम होता है कहीं आपको देखा है...

बुद्ध—जब तक सम्यक दृष्टि नहीं प्राप्त होती, आँखें हमेशा धोखा देती आई हैं सम्राट ! सम्राटों की आँखें और पुरोहितों की आँखें भी।

पुरोहित—सम्राट, बहुत देर से यह बहकी-बहकी बातें कह रहा है। इसने गड़ेरियों को रोककर ढोर लाने में देर कर दी; ढोरों को हँकाने नहीं देता था, मारने नहीं देता था। एक लँगड़े बकरे को तो कंधे पर उठा लिया था इसने—उसका रक्त तक धोया है !

बुद्ध—संसार में व्यर्थ बहाये जानेवाले रक्त को धोने के लिए ही तथागत का आगमन हुआ करता है, सम्राट !

विम्बसार—तथागत का...व्यर्थ बहाये जानेवाले रक्त को धोने के लिए। भिक्षु, मालूम होता है तुम्हारी वाणी मैंने कहीं कभी सुनी है !

बुद्ध—आँखें धोखा देती हैं, कान धोखा देते हैं, सारी इन्द्रियाँ धोखा देती हैं, सम्राट ! इन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए ही तो तथागत को इतने अनुसंधान और अनुष्ठान करने पड़े —जप-तप में जलना-तपना पड़ा, तब कहीं उसने बोधि प्राप्त की !

बिम्बसार—ओहो, तो आप सिद्धार्थ गौतम हैं ?

बुद्ध—फिर धोखा सम्राट, फिर धोखा ! सत्य को देखो, यथार्थ को देखो। तुम्हारे सामने सिद्धार्थ नहीं, तथागत खड़े हैं।

बिम्बसार—तथागत ! तो आपने बुद्धत्व प्राप्त कर लिया !

बुद्ध—हाँ, सम्राट ! जिस मार्ग का पता आजतक किसीने नहीं पाया, मैंने वह मार्ग प्राप्त कर लिया—ज्ञान का मार्ग, निर्वाण का मार्ग।

बिम्बसार—तो तथागत, तथागत ! हमारे राजभवन में पधारिये और मुझे मुक्ति का मंत्र दीजिये।

बुद्ध—अपनी मुक्ति के पहले इन पशुओं को मुक्त करो सम्राट ! इन अचेतन निरीह पशुओं को और (पुरोहित की ओर निर्देश करते हुए) इन चेतन-नामधारी दो हाथ-पैर के पशुओं को भी, जो यज्ञादि के नाम पर संसार में अनर्थ मचा रहे हैं !

४

[कपिलवस्तु की याद : गृद्धकूट के शिखर पर]

बुद्ध—गिरिव्रज कितना सुन्दर लगता है, उदयी। ये मंडलाकार पर्वत; ये सुनहली धनखेतियाँ; यह वेणुवन; यह गृद्धकूट —सबके सब कैसे भव्य-दिव्य लगते हैं।

उदय—गिरिव्रज ने तथागत के धर्ममार्ग को सम्राट विम्बसार दिया और फिर उसीने सारिपुत्र, मौद्गल्यायन, महाकाश्यप और महाकात्यायन ऐसे चार नर-रत्न दिये! तथागत के प्रभाव और इनके प्रयत्नों से इस धर्म-मार्ग पर अनेकानेक जनपद और जनसमूह आरूढ़ होते चले जा रहे हैं। सुदूर श्रावस्ती से, कौशाम्बी से, बारानसी से, विदेह से, अंग से—चारों ओर से जिज्ञासुओं के दल के दल गिरिव्रज की ओर सावन के बादल की तरह उमड़े आ रहे हैं!

बुद्ध—और, कपिलवस्तु भी मुझे न भूल सकी! तुम्हारे पहले भी एक सहस्र युवक यहाँ आकर प्रवज्या ले चुके हैं, उदयी।

उदय—हाँ, उन्होंने प्रवज्या ली, मैंने प्रवज्या ली; किन्तु हम सब जिस उद्देश्य से आये थे, अफसोस, उसे याद रखे होते!

बुद्ध—तुमलोगों के आने का क्या कोई दूसरा उद्देश्य भी था उदयी?

उदय—हाँ शास्ता ! हमें महाराज शुद्धोदन ने भेजा था कि आपको......

बुद्ध—क्या ? महाराज ने ? तो क्या महाराज चाहते हैं कि मैं कपिलवस्तु आऊँ ? इसी दिशा में न कपिलवस्तु होगी, उदयी ? ओहो, मैं कपिलवस्तु को छोड़ आया; किन्तु कपिल-वस्तु मुझे न छोड़ सकी।

उदय—यदि आप यह जान पाते कि आपके बाद कपिल-वस्तु की क्या दशा हुई, तो ऋषिपत्तन मृगदाव में धर्मचक्र प्रवर्त्तन के बाद आप गिरिवर्य न आकर सीधे कपिलवस्तु पहुँचे होते तथागत ! आपके वियोग में......

बुद्ध—वियोग दुख का कारण है उदयी ?

उदय—हाँ-हाँ, वियोग दुख का कारण है और उस दुख को आधे युग से कपिलवस्तु के नरनारी भुगत रहे हैं। महाराजा या रनिवास की बातें अलग कीजिये, शास्ता; सारे नगर में तबसे कोई उत्सव न हुआ, न बाजे बजे, न नृत्य हुआ, न रंग-रलियाँ देखी गईं, न अठखेलियाँ। और महाराज शुद्धोदन ! महाराज अगर जीवित हैं, तो सिर्फ राहुल कुमार के लिए तथागत !

बुद्ध—राहुल ? राहुल तो अब दौड़ता-चलता होगा, उदयी ?

उदय—जबसे राहुलकुमार के पैरों में गति और मुँह में वाणी आई है, तबसे रनिवास का शोक और बढ़ गया है। वह

हमेशा पूछा करते हैं—पिताजी कब आयँगे ? और, बार-बार रनिवास से दौड़कर घुड़साल में जाते और छंदक के कन्धे पर चढ़कर कहते हैं—मुझे पिताजी के निकट पहुँचा दो, छंदक ।

बुद्ध—उफ् ! बड़ा शोख हो चला है ! उसकी ये हरकतें यशोधरा को......

उदय—देवी यशोधरा ? उनकी हालत क्या है, यह मत पूछिये तथागत ! जिस दिन आप घर से निकले, सब लोग रोये-धोये ; किन्तु वह न रोईं, न आँसू बहाये । किसी-से पूछा—तपस्वी लोग क्या पहनते होंगे, क्या खाते होंगे, कैसे सोते होंगे ! और उसी दिन से उन्होंने कापाय वस्त्र धारण कर लिया......

बुद्ध—कापाय वस्त्र ?

उदय—हाँ-हाँ, तथागत ! उस दिन से देवी यशोधरा कापाय वस्त्र ही पहनती हैं; फल-मूल ही खाती हैं और वह भी दिन में एक ही बार और जमीन पर कुश की साथरी बिछाकर उसी पर सोती है ।

बुद्ध—घर में रहकर भी ऐसी साधना !

उदयी—देवी यशोधरा को देखकर और उनकी साधना की कथा सुनकर किसके मुँह से आह नहीं निकलती है, तथागत ! उस रात जिस शय्या पर आप सोये थे, उस शय्या को उसी रूप में सजाकर रखे हुई हैं । प्रतिदिन प्रात: उसे धूप-आरती

दिखाती हैं और प्रतिदिन संध्या को अनेक दीप-मालिकाओं से उसे जगमग कर देती हैं। इस विषाद में भी उनका मुख-मण्डल स.ा उद्दीप्त रहता है और शोकसंतप्त रानी प्रजावती से वह कहा करती हैं—माताजी, वह जरूर आयेंगे, आकर ही रहेंगे।

बुद्ध—हाँ, हाँ; छंदक के द्वारा मैंने संवाद भेजा था कि मैं जरूर लौटूँगा।

उदय—और, एक उपहार भी तो आपने छंदक-द्वारा भेजा था। आपके उन अनमोल लटों को एक रत्न-खजित मंजूषा में रखकर आपकी शय्या पर उन्होंने धर दिया है। प्रतिदिन प्रातः-संध्या उन लटों को निकालती हैं, आँखों से लगाती हैं, चूमती हैं; फिर अश्रुसिक्त नयनों से बार-बार देखती हुई उसे मंजूषा में बन्द कर देती हैं। एक दिन तो भावावेश में वह उस मंजूषा को लिये हुए रानी प्रजावती तक दौड़ गईं और बोलीं—माँ-माँ, देखो, ये बाल बढ़ रहे हैं! माँ! आर्यपुत्र लौटेंगे, जरूर लौटेंगे।

बुद्ध—यशोधरा को मैं जानता हूँ, उदयी! अब उसकी व्यथा-कथा मत बढ़ाओ। मौसी प्रजावती का क्या हाल है?

उदय—संयोग ही कहिये कि उन्हें राहुल का आसरा मिल गया; नहीं तो कब न स्वर्ग में अपनी बहन से जा मिली होतीं। वह दिन भर राहुल को गोद में लिये फिरती हैं और रात में

उस भवन के द्वार पर सोती हैं, जिसमें राहुलकुमार सुलाये जाते हैं। वह कहती हैं—'बेटी यशोधरे, तुम्हारी नींद अच्छी नहीं है, बेटी! तू सोती रही और मेरा बेटा चल दिया। अब राहुल पर मैं स्वयं पहरा दूँगी। मेरी तकदीर बुरी है, बहुत बुरी है! न जाने राहुल भी कहीं भाग जाय?' और, यथार्थ बात यह है शास्ता, कि वह रात भर सोती ही कहाँ है? और, जरा-सा भी खटका हुआ कि बोल उठती हैं—'राहुल? यशोधरे, जगी तो हो बेटी?'

बुद्ध—रहने दो, रहने दो उदयी! कपिलवस्तु के दुख......

उदय—यदि दुख-निरोध-गामिनी प्रतिपद के, धर्म के मध्यम मार्ग के उपदेश की कहीं आवश्यकता है, तो कपिलवस्तु में ही तथागत! बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु पर विजय प्राप्त करनेवाले जिस आष्टांगिक मार्ग का आपने पता लगाया है उसके सबसे उपयुक्त पात्र कपिलवस्तु के नर-नारी हैं, सारा शाक्यकुल है। अपने होने के अपराध में उनलोगों को अधिक दिनों तक अपनी ज्ञान-धारा से वंचित न रखिये, तथागत!

बुद्ध—मैं कुछ दिनों से सोच रहा था, उदयी, कि मुझे कपिलवस्तु जाना चाहिये। बार-बार मैं कानों में एक पुकार सुनता रहा, हृदय में एक आकर्षण अनुभव करता रहा; किन्तु......

उदय—किन्तु अब अधिक विलम्ब नहीं तथागत! देखिये, बसन्त का यह कैसा सुहावना समय है! खेतों में तरह-तरह

के दलहन और तेलहन फूल रहे हैं; बगीचों में बौर और भौंर की भरमार है; पथ में धूल नहीं, धूप नहीं; नदियाँ सिमट कर! यात्रियों को अनायास रास्ता दे देती हैं। चला जाय, तथागत देखिये, वह उत्तर दिशा। देखिये और सुनिये—कपिलवस्तु अपने सिद्धार्थ कुमार को, संसार के तथागत को किस आर्त-वाणी में पुकार रही है!

बुद्ध—तथास्तु! उदयी, भिक्षुओं से कहो, वे कपिलवस्तु चलने की तैयारी करें।

५

[प्रत्यावर्त्तन : कपिलवस्तु में यशोधरा का कक्ष]

यशोधरा—तब क्या हुआ परिचारिके ?

परिचारिका—ज्यों ही कपिलवस्तु के लोगोंको मालूम हुआ कि कुमार आ रहे हैं; सारी नगरी उमड़ पड़ी। आगे-आगे बच्चे थे, उनके पीछे युवक-युवतियाँ, सबके पीछे वृद्धों की मंडली। सब-के-सब पैदल थे, सबके हाथों में स्वागतार्थ पुष्प-माला या रोली-आरती थी। सबके मुँह से स्वागत का जयनाद निकल रहाथा कि लोगोंने देखा—बीस हजार भिक्षुओं के साथ कुमार आ रहे हैं!

यशोधरा—बीस हजार भिक्षुओं के साथ !

परिचारिका—हाँ, छोटी रानीजी, बीस हजार भिक्षुओं के साथ ! उन बीस हजार भिक्षुओं के आगे कुमार थे। वे ऐसे दिप रहे थे, जैसे तारों के बीच चंद्रमा। न वह तेजी से चल रहे थे, न धीमे मद्धिम गति से उनके पैर उठ रहे थे। उनकी आँखें सिर्फ जूये भर आगे देखती थीं—अगल-बगल भी उनकी नजर नहीं जाती थी। चेहरे पर एक अजीब तेजपुंज सौम्यता। समूचे शरीर से एक अभा-सी फूट रही थी !

यशोधरा—उन्होंने तपस्या भी तो ऐसी ही की है, परिचारिके ! फिर क्या हुआ ?

परिचारिका—पुरवासियों ने उनका आगत-स्वागत किया, फिर राजधानी की सर्वश्रेष्ठ बाटिका में ले जाकर उन्हें टिकाया। बीस हजार भिक्षुओं की मंत्र-ध्वनि से वह बाटिका ध्वनित-प्रतिध्वनित हुई !

(मंत्रध्वनि का स्वर सुनाई पड़ रहा है)

यशोधरा—अब भी वह मंत्रध्वनि सुनाई पड़ रही है, परिचारिके !

परिचारिका—ऐं ! हाँ, यह तो मंत्रध्वनि ही है—तो क्या भिक्षु नगर में आ रहे हैं ?

यशोधरा—तू जरा देख तो आ कि यह क्या है ?

(परिचारिका जाती है)

यशोधरा—हाँ, हाँ, यह मंत्रध्वनि ही तो है ! तो क्या वह

नगर में आ रहे हैं ? क्या वह यहाँ भी आवेंगे ? आना ही पड़ेगा उन्हें ! क्यों नहीं आवेंगे वह ? हृदय, हृदय ! तू शंका-शील मत बन ! मस्तिष्क, मस्तिष्क ! तू भूलभूलैया में मत डाल ! वह आवेंगे ! अवश्य आवेंगे ! अरे, मंत्रध्वनि तो अब बिल्कुल निकट होती आ रही है ! अहा ! वह आ रहे हैं ! आ रहे हैं !

(दौड़ता हुआ राहुल आ रहा है)

राहुल—माँ, माँ, वे लोग आ रहे हैं ! ओह, माँ, कितनी बड़ी भीड़ है; कैसे लग रहे हैं वे ! तू क्यों नहीं देखती माँ ! प्रकोष्ठ पर चल न !

यशोधरा—नहीं, नहीं ! अधीर मत बन बेटा ! तू यहीं रह, यहीं रह ! वे यहीं आवेंगे, वे यहीं आ रहे हैं !

राहुल—यहीं आवेंगे ? तो दादाजी क्यों उस ओर दौड़े हुए जा रहे थे, माँ ?

यशोधरा—तुम्हारे दादाजी जा रहे थे ?

(परिचारिका का प्रवेश)

परिचारिका—हाँ छोटी रानी ! महाराज भी वहाँ जा पहुँचे हैं ! आह !

यशोधरा—इतनी व्याकुल मत बन परिचारिके ! बता क्या देख आई ?

परिचारिका—उफ़ ! सारे नगर में शोक का समुद्र उमड़ रहा है, छोटी रानी ! कुमार अपनी भिक्षु-मंडली को लेकर नगर में

भिक्षाटन के लिए प्रवेश कर रहे हैं! राजपथ पर अपार भीड़ है। अट्टालिकायों पर नर-मुंड ही नर-मुंड। झरोखों से कुल-कामिनियाँ झाँक रही हैं। द्वारों पर मातायें सर्वोत्तम भिक्षा लिये खड़ी हैं। सबकी आँखों में आँसू! उन आँसुओं के समुद्र में ज्वार तब आया......उफ़, ओह!

यशोधरा—बोलो, परिचारिके, बोलो! हाँ, उन आँसुओं के समुद्र में ज्वार तब आया......

परिचारिका—उन आँसुओं के समुद्र में ज्वार तब आया, छोटी रानी, जब लोगोंने देखा, महाराज पाँव-पयादे, धोती का छोर सम्हालते दौड़े हुए आ रहे हैं! वह दौड़ते हुए कुमार के सामने जा खड़े हुए और बोले—बेटा, बेटा, यह क्या कर रहे हो?' सुनकर कुमार मुस्कुरा पड़े और अपने भिक्षापात्र को आगे बढ़ाते हुए कहा—'अपने कुल का धर्म निबाह रहा हूँ, महाराज!'

यशोधरा—कुल का धर्म?

परिचारिका हाँ, कुमार ने यही कहा। सुनकर महाराज बोले—'शाक्यकुल का धर्म भिक्षाटन करना नहीं है!' तुरत कुमार का चेहरा गम्भीर हो गया और वह बोले—'महाराज, यह आपके सामने जो खड़ा है, वह शाक्यकुल का सिद्धार्थ नहीं है; यह तो बुद्धकुल का तथागत है!'

यशोधरा—शाक्यकुल का...नहीं, बुद्धकुल का तथागत!

तथागत :

परिचारिका—हाँ, कुमार ने यही कहा। सुनते ही महाराज
की आँखों से एकबारगी आँसू झड़ने लगे! महाराज फूट-फूट-
कर रोने लगे; सारे लोग रोने लगे। द्वारों पर मातायें रोने
लगीं; छज्जों पर गृह-देवियाँ रोने लगीं! किन्तु, महाराज को
जैसे तुरत भान हुआ, यह क्या कर बैठे वह! वह सम्हल कर
बोले—'तो पहली भिक्षा मेरे ही द्वार से ग्रहण करें तथागत!'
और, छोटी रानी, कुमार अपनी मंडली के साथ यहीं आ
रहे हैं!

(प्रजावती का प्रवेश)

प्रजावती—बेटी, बेटी, सिद्धार्थ दरवाजे पर खड़ा है बेटी, और
तू यहाँ बैठी है? चल बेटी, उसकी अगवानी कर। इस भीड़-
भाड़ में भी उसकी आँखें जैसे तुम्हें ही खोज रही हैं, बेटी!

यशोधरा—खोज रही हैं, तो खोज ही लेंगी माताजी!

प्रजावती—हाँ, खोज लेंगी; पर अगवानी करना तो तुम्हारा
धर्म है यशोधरे!

यशोधरा—माताजी, क्षमा करें—मैंने उनको नहीं छोड़ा था;
उन्होंने मुझे छोड़ा था! और, अब यह उनका धर्म है कि......

प्रजावती—मान मत कर बेटी, मान मत कर! आधे युग के
बाद मेरा बेटा लौटा है!

यशोधरा—आप घबड़ायें नहीं माताजी, अगर मेरा प्रेम
सत्य है, अगर मेरी साधना सच्ची है, तो उन्हें मेरे पास आना

ही पड़ेगा, माताजी ! वह सोई को छोड़ सकते थे, जगी उन्हें......

(बुद्ध का प्रवेश)

बुद्ध—मैं आ गया भद्रे !

यशोधरा—आ गये ! आह ! (चरणों पर गिर पड़ती है)

बुद्ध—उठो भद्रे ! (उठाते हैं)

यशोधरा—नाथ !

बुद्ध—कल्याण हो भद्रे ! तुम्हारा हठ रहा न ? अब विदा दो !

यशोधरा—इस बार आप अकेले न जा सकेंगे, नाथ !

बुद्ध—अभी कपिलवस्तु में कुछ दिन रहूँगा, भद्रे ! इस समय चला। (मुँड़कर चलते हैं)

राहुल—माँ, माँ !

यशोधरा—ओह, तू कहाँ था बेटा ? देख, तेरे पिताजी वह आँगन में जा रहे हैं, उनसे अपनी पैतृक सम्पत्ति माँग !

राहुल—(बुद्ध के निकट दौड़कर जाता है) भन्ते, आपकी छाया बड़ी सुखद है !

बुद्ध—क्यों, पैतृक सम्पत्ति चाहिये ?

राहुल—माँ ने आज्ञा दी है !

बुद्ध—तो सारिपुत्र, राहुल को प्रवज्जित करो !

प्रजावती—बेटा, बेटा, यह क्या कर रहे हो बेटा !

यशोधरा—माताजी, किसी बच्चे को उसकी पैतृक सम्पत्ति से वंचित करना उचित नहीं। राहुल जा प्रवज्या ले!

६

[शुद्धोदन का मनस्ताप : कपिलवस्तु का राजप्रासाद]

शुद्धोदन—(अकेले घूमते और कहते जाते हैं) सब चले गये, सभी चले गये। जब एक गया, तो दूसरे, तीसरे को देखकर जीता रहा! अब सब जा रहा है! नन्द! तुम्हें भी यह क्या सूझा बेटा! विलास में जो डूबा था; सुन्दरियों से जो चिपका था; बेटा, यह क्या जादू हुआ कि तुम भिक्षु बन गये। नन्द और भिक्षु!

(भीतर से संगीत-स्वर—'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय')

हाँ, बहुतों के हित के लिए, बहुतों के सुख के लिए, नन्द भी भिक्षु बन गया! वह भी चला। अच्छा! तुम दोनों भाई गये—सिद्धार्थ गया, नन्द गया! किन्तु, यह कहाँ का न्याय था बेटा, कि राहुल को भी लेते गये! राहुल! मेरे जीवन का एकमात्र सहारा! उसके बिना क्या मैं जी सकूँगा! तुम बहुतों के हित, बहुतों के सुख की बात कहते हो, तो क्या उन बहुतों में मैं भी एक नहीं हूँ? फिर मुझे क्यों दुख में रखे जा रहे हो! ओह!

(प्रजावती का प्रवेश)

प्रजावती—महाराज, यह विलाप शाक्यकुल के अनुरूप नहीं !

शुद्धोदन—ओह, प्रजावती, प्रजावती ; सब चले गये प्रजावती, सब चले गये ! सिद्धार्थ गया, नन्द गया, राहुल गया। उदयी गया, आनन्द गया, अनिरुद्ध गया ! शाक्यकुल में एक भी प्रतिभावान नहीं रह गया, प्रजावती ! सब चले गये, सभी चले गये ! उपाली नाई तक गया ! उपाली, उपाली ! तुम्हारा भी एक भाग्य था भाई ! सुना, सबसे पहले तुम्हें ही भिक्षु बनाया गया, जिसमें शाक्यकुल के सभी राजकुमार तुम्हें ही प्रणाम किया करें ! सिद्धार्थ, कैसी समता की धारा बहा दी है तुमने ? क्षत्रियकुमार नाई को प्रणाम किया करें ! प्रजे, प्रजे ! एक नई धारा बह गई है प्रजे ! वह धारा किसीके पैर को स्थिर नहीं रहने देगी, सबको भसा ले जायगी, दहला ले जायगी !

प्रजावती—देख रही हूँ महाराज, देख रही हूँ !

(भीतर से फिर संगीत-स्वर—'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय')

शुद्धोदन—हाँ, हाँ, बहुजन हिताय ! बहुजन सुखाय ! बहुतों के हित के लिए, बहुतों के सुख के लिए दो-दो बेटे गये, पोता गया, परिजन गये, पुरजन गये ! सब गये, सभी गये। सारा शाक्यकुल जा रहा है—जाओ, जाओ !

(यशोधरा का प्रवेश)

यशोधरा—पिताजी, आज्ञा......

शुद्धोदन—आज्ञा ! ओहो, तो तुम भी चलीं ! बेटे गये, पोता गया, अब पतोहू भी चलीं ! बहुतों के सुख के लिए, बहुतों के हित के लिए ! तो प्रजावती, तुम भी क्यों नहीं जाती ? जाओ भाई, जाओ, तुम सब चली जाओ ! जाओ, सारे राज-भवन को सूना कर दो, सारी कपिलवस्तु को सूना कर दो ! सभी जाओ, एक-एक स्त्री-पुरुष जाओ ! बहुतों के सुख के लिए, बहुतों के लिए !

(संगीत का स्वर—'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय')

हाँ जरा जोर से गाओ, जोर से कि संसार में कोई दूसरा स्वर नहीं सुनाई पड़े ! इतने जोर से कि संसार का सारा विलाप-प्रलाप इसमें ढँक जाय—सारा हाहाकार और आर्त्तनाद ढँक जाय ! (प्रजावती और यशोधरा की ओर ध्यान देकर) तो तुम यहाँ खड़ी क्यों हो—जाओ, जाओ ! प्रजावती; तुम भी आज्ञा माँग रही हो, प्रजावती ! तुम्हारा मुँह नहीं खुल रहा किन्तु तुम्हारी आँखें आज्ञा माँग रही हैं ! हाँ, हाँ, बाप अपने बेटे को भले ही छोड़ दें, सास अपनी पुतोहू को क्यों छोड़े ! जाओ, तुम जाओ—आह ! आज माया न हुई; नहीं तो वह भी जाती...

प्रजावती—महाराज, महाराज ऐसा अधीर......

शुद्धोदन—अधीर और मैं न होऊँ? दो-दो बेटे गये, पोता गया, परिजन गये पुरजन गये, पत्नी चली, पुतोहू चली: और मैं अधीर न होऊँ? ओह! लेकिन तुमलोग यहाँ क्यों खड़ी हो? जाओ, जाओ......

(दोनों चरण छू कर जाती हैं)

चले गये, सब चले गये! बहुतों के हित के लिए, बहुतों के सुख के लिए! किन्तु शुद्धोदन, तुम यहाँ क्यों हो? किनके लिए, किसके लिए! जवाब क्यों नहीं देते शुद्धोदन, जवाब क्यों नहीं देते शुद्धोदन! शुद्धोदन! शुद्धोदन!

(प्रमत्त-सी चेष्टा : यवनिका-पतन)

विरोध और विजय

१

[देवदत्त का विरोध : राजगृह का एक अंचल]

आनन्द—तुम यहाँ कैसे देवदत्त ! तथागत के धर्ममार्ग ने आखिर तुम्हें भी खींच ही लिया ?

देवदत्त—तथागत ! तथागत ! ये ढोंग की बातें राजगृह के भोलेभाले निवासियों के लिए रहने दो, आनन्द ! जिसने अपने कुलधर्म को डुबोया, जिसने कुल को डुबोया, उसका नीच मार्ग तुम ऐसे नीचों को भी खींच सकेगा !

आनन्द—देवदत्त, देवदत्त ! इस तरह की बातें जबान पर मत लाओ ! मानता हूँ, तथागत जब सिद्धार्थ कुमार थे, तभी से तुम उनसे प्रतिस्पर्द्धा करते रहे, जलते रहे; किन्तु ईर्ष्या

की भी एक हद होती है, देवदत्त! अब तथागत जहाँ पहुँच गये हैं......

देवदत्त—वहाँ से उसे नीचे ढकेलूँगा, उसे रसातल भेजूँगा। ढोंग, ढोंग! इस ढोंग ने देश का काफी सर्वनाश किया, अब इसे रोकना ही है, आनन्द!

आनन्द—सर्वनाश किया! कैसी गलत बातें कर रहे हो, देवदत्त! तथागत की इस मध्यम प्रतिपदा ने देश में जीवन की एक नई लहर दौड़ा दी है! चारों ओर हृदय-मंथन हो रहा है, क्षुद्र कुटीरों से लेकर अट्टालिकाओं तक में जीवन के प्रति लोगों में एक नये प्रकार की धारणा जग रही है। बहुत लोगों के हित के लिए, बहुत लोगोंके सुख के लिए, लोककल्याण के लिए, देवताओं की प्रसन्नता के लिए देश के नवयुवक सुख ऐश्वर्य पर, मौजमौज पर लात मार रहे हैं। ऐसा दृश्य इस आर्यभूमि में कभी देखा गया था देवदत्त!

देवदत्त—हिस्...क्या बके जा रहे हो? तुम देखते नहीं; इसने ऐसी सनक देश में चला दी है कि सारे देश में कोहराम मच रहा है। माताओं की गोद से यह बच्चों को खींच रहा है, पत्नियों की सुहाग-शय्या से यह पतियों को खींच रहा है—बहनें भाइयों के नाम पर रो रही हैं, बाप बेटे के लिए उसासें भर रहे हैं। जहाँ देखो, वहीं माताओं, पत्नियों, बहनों के चीत्कार, हाहाकार! नहीं, नहीं, इस अनर्थ को रोकना होगा,

इस सनक को रोकना होगा ! तथागत, तथागत ! दम्भ में इस तरह बातें करता है कि जैसे ईश्वर का अवतार ही हो। इस दम्भ को धूल में न मिला दूँ, तो मैं शाक्यकुल......

आनन्द— शाक्यकुल की शपथ मत खाओ, देवदत्त ! जो करना हो, करो। उस कुल का नाम लेकर उसे अपवित्र करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं, जिसने संसार को इतना बड़ा महात्मा दिया ! तुम न होगे, हम न होंगे किन्तु तथागत...

देवदत्त—फिर तथागत ! जाओ आनन्द, अपने तथागत से कह दो—देवदत्त राजगृह में आया है, वह सावधान रहे ! जिस सम्राट बिम्बसार के बूते पर वह अपनी धौंस संसार पर जमा रहा है, वह बिम्बसार भी अपनी खैर मनावे ! (गुस्से में) सिद्धार्थ, सम्हलो; बिम्बसार, सम्हलो !

आनन्द—मार भी जिसका कुछ न बिगाड़ सका, उसका तुम क्या कर लोगे, देवदत्त !

देवदत्त—मार न बिगड़ सका, क्योंकि वह कल्पना का देवता है ! देवदत्त ठोस मानव है ! फिर मार ने क्या किया और क्या नहीं, इसका कोई प्रमाण है ? किन्तु देवदत्त जो करेगा, उसे संसार देख लेगा, संसार ! जाओ, सिद्धार्थ से कहो—सम्हले ! जाओ, बिम्बसार से कहो, सम्हले ! अब बिम्बसार की जगह अजातशत्रु राज करेगा; तथागत की जगह देवदत्त......

आनन्द—ओहो ! ऐसी महत्वाकांक्षा ! जाता हूँ देवदत्त, जाता हूँ ! तुमसे बहस करके कौन समय बर्बाद करे ! अर्हत तुम्हें सुबुद्धि दें !

२

[षड्यंत्र : गृद्धकूट का प्रान्तर]

(नेपथ्य में चट्टान टूटकर गिरने की आवाज़)

उदय—आनन्द, आनन्द ! यह कैसी आवाज़ आनन्द !

आनन्द—अरे, शायद चट्टान टूटकर गिर रही है ! चट्टान ! चट्टान !

(आवाज़ नज़दीक आती है)

उदय—बचो; बचो, आनन्द !

आनन्द—हटो, हटो, भिक्षुओ !

उदय—आनन्द, आनन्द, तथागत कहाँ हैं आनन्द ?

आनन्द—तथागत ! तथागत तो वहाँ एक शिला-पट्ट पर बैठकर ध्यान कर रहे थे ! ओहो, यह चट्टान तो उसी तरफ लुढ़कती मालूम पड़ती है !

उदय—(चिल्लाता है) तथागत !

आनन्द—(उदय के स्वर में स्वर मिलाकर) तथागत !

(नेपथ्य से आवाज़ आती है—'तथागत !' 'तथागत !' फिर जोरों का अट्टहास सुनाई पड़ता है)

उदय—ओह ! यह तो देवदत्त का स्वर मालूम होता है !

आनन्द—हाँ, हाँ ! यह देवदत्त है ! यह उसीका षडयंत्र मालूम होता है, उदयी ! ओह, तथागत को बचाओ !

(दोनों नेपथ्य में जाते हैं। भीतर से जोरों की आवाज़ : बाहर गर्द-गुबार ! फिर शान्ति। उदय और आनन्द आते हैं।)

आनन्द—कैसी विचित्र लीला उदयी ! उफ़, हम देख रहे थे, चट्टान सीधे तथागत के सर पर लुढ़कती आ रही थी, लुढ़की आ रही थी कि अचानक वह दो टुकड़े होकर दोनों तरफ बिखर गई !

उदय—और, तथागत उसी प्रकार ध्यानस्थ बैठे रहे। सम्यक समाधि का कैसा ज्वलन्त उदाहरण ! तथागत सचमुच अवतार हैं आनन्द ! चट्टान भी उनपर फूल बनकर गिरती है—उफ !

आनन्द—एक दिन तो मैंने इससे भी एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा था; किन्तु, किसीसे कहा नहीं। क्योंकि कहीं लोग अलौकिकता के पीछे उनके लौकिक सन्देश को न भूल जायँ !

उदय—क्या देखा था आनन्द !

आनंद—मालूम होता है, देवदत्त ने तथागत के विरुद्ध षडयन्त्र का एक जाल-सा बिछा रखा है। और, इस षडयन्त्र में राजपुरुष, श्रेष्ठिवर्ग और पुरोहित विशेष रूप से भाग ले

रहे हैं। वे तथागत और सम्राट विम्बसार की जान के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं!

उदय—अरे-अरे!

आनंद—उस दिन श्रीगुप्त सेठ की पत्नी आई थी न तथागत को निमंत्रण देने?

उदयी—हाँ-हाँ! तुम ही तो तथागत के साथ गये थे।

आनंद—जब श्रीगुप्त को मालूम हुआ कि उनकी धर्मानुगामिनी पत्नी ने तथागत को निमंत्रित किया है, तब वह आगबबूला हो उठा—तो यह बीमारी मेरे घर में भी घुस गई! अच्छा, तो मैं इस बीमारी के मूल को ही आज खत्म कर देता हूँ, ऐसा निश्चय कर.........

उदय—उसने तथागत की जान लेने की साजिश की! उफ्, फिर क्या हुआ आनन्द?

आनन्द—श्रीगुप्त ने एक गर्हित षड्यंत्र किया था। जिस पथ से तथागत को जाना था, उसके बीच उसने एक खाई खुदवाई थी और उसमें जलते हुए कोयले रखवाकर ऊपर इस तरह राह बनवा दी थी कि नीचे का रहस्य मालूम न हो। मेरे मन में श्रीगुप्त के प्रति कुछ खटका था, मैंने निवेदन किया था कि श्रीगुप्त नीचातिनीच कार्य कर सकता है, आप उसके घर न जायँ। किन्तु तथागत ने कहा—भिक्षु निमंत्रण को अस्वीकार नहीं कर सकता!

उदय—अहा, कैसी महानता !

आनन्द—तो भगवान उस ओर चले। उस खाई पर पहुँचे। निकट जाते ही भाँप गये, मुस्कुरा पड़े और कहा—आनन्द, तुम जरा ठहर जाओ, मुझे कुछ दूर निकल जाने दो। मैं खड़ा हो गया। भगवान आगे बढ़े, बढ़ते गये। अब वह खाई के उस पार थे और लो, यह क्या ? जहाँ खाई थी, जिसमें दहकते कोयले थे, वहाँ सरोवर हो गया और उसमें कमल के फूल खिल आये, जिनपर भौंरे गुंजार करने लगे ! भगवान ने हँसकर मुझसे कहा—देखो, आनन्द, यह 'मंजु-गुंज-भृंग-सरोजिनी'!

उदय–तथागत अलौकिक व्यक्ति हैं आनन्द ! किन्तु, कितना आश्चर्य ! ज्यों ही अलौकिकता की चर्चा कीजिये कह उठते हैं—'आँखें हमें धोखा देती हैं, इन्द्रियाँ हमें धोखा देती हैं, जो ये बतावें, वे ही सदा सत्य नहीं हुआ करते, भिक्षुओ !'

आनन्द—उनकी अलौकिकता का यह भी एक प्रमाण है, उदयी ! हम धन्य हैं कि उनके साहचर्य का सुअवसर हमें प्राप्त हो सका।

(समय के व्यवधान की सूचना के लिए कुछ देर रंगमंच की रोशनी धीमी पड़ जाती है; फिर नेपथ्य में कोलाहल सुनाई पड़ता है —'भागो, भागो, मतवाला हाथी आ रहा है, मतवाला हाथी, भागो, भागो, ।' रह-रहकर हाथी की चिग्घाड़ भी सुनाई पड़ती है। फिर रंगमंच पर भगवान बुद्ध और आनन्द दिखाई पड़ते हैं।)

आनन्द—तथागत, तथागत ! मतवाला हाथी !

बुद्ध—(कुछ नहीं बोलते, मद गति से बढ़ते जा रहे हैं)

आनन्द—तथागत, तथागत ! मतवाला हाथी !

बुद्ध—(फिर कुछ भी नहीं बोलकर बढ़ते जा रहे हैं)

आनन्द—तथागत, तथागत !

(कोलाहल और निकट—'भागो, भागो' के स्वर के बीच हाथी की चिग्घाड़ निकटतर)

बुद्ध—(फिर भी कुछ नहीं बोलते)

आनन्द—(करुण स्वर में बुद्ध के सामने जाकर) तथागत, तथा-गत ! मतवाला हाथी, तथागत !

बुद्ध—आनन्द, मतवाला हाथी देखकर आदमी तो मतवाला न बने ! (आगे बढ़ते हैं)

आनन्द—(रोते हुए) ओह, तथागत, तथागत—आह ! आह !
(नेपथ्य के एक कोने से विद्रूप के स्वर में आवाज आती है—'ओह, तथागत, आह ! आह !' फिर अट्टहास होता है)

बुद्ध—(बढ़ते ही जाते हैं)

आनन्द—ओह, षड्यंत्र, षड्यंत्र ! तथागत, षडयंत्र !

बुद्ध—शान्त, आनन्द, शान्त ! हम अपने रास्ते को न छोड़ें, तो दुनिया को भी अपने रास्ते पर चलने को मजबूर होना पड़ेगा आनन्द ! और षडयंत्र ! सत्य के प्रतिकूल कोई षड्यंत्र चल नहीं सकता है आनन्द !

आनन्द—नहीं शास्ता, नहीं। ओह, ओह! वह निकट आगया हाथी, वह आगया; हाथी, हाथी! नेपथ्य से हाथी का चिग्घाड़; फिर हाथी की सूँड़ रंगमंच पर दिखाई पड़ती है : लोगोंके हाहाकार और चीत्कार का शब्द)

बुद्ध—गजराज, गजराज! (जैसे वह रुक गया हो : सूँड़ पर हाथ फेरत हुए) ओहो, तुम रुक क्यों गये गजराज! क्यों रुक गये? रुक क्यों गये और अब झुक क्यों रहे हो? तथागत का आसन तुम्हारे कंधे पर नहीं हो सकता गजराज! उसने तुम्हारी पीठ कब न छोड़ दी! दुनिया में अशान्ति इसीलिए है गजराज कि कोई किसीके कंधे पर चढ़कर चलना चाहता है। सत्य के पथ पर अपने ही पैरों पर चलना होता है! तुम अपने रस्ते जाओ, तथागत अपने रस्ते! (सिर ऊपर करके) ओहो, तुम्हारी आँखों से आँसू का यह झरना चल रहा है! आदमी भी अपनी गलतियों पर यों ही पश्चात्ताप करता! जाओ (सूँड़ अदृश्य हो जाता है)।

आनन्द—तथागत की जय! तथागत की जय!

(नेपथ्य से 'तथागत की जय! तथागत की जय!' की ध्वनि-प्रतिध्वनि)

बुद्ध—आनन्द, यह मेरी करामात नहीं, सत्य की करामात है—सत्य के मध्यम मार्ग की करामात है! सत्य की जय कहो, सत्य के मध्यम मार्ग की जय कहो!

३

[मृत्यु पर विजय : राजगृह का एक अंचल]

गौतमी—(रोती हुई) हाय, स्थविर ; ओह, तथागत ! मेरे बच्चे को बचाइये स्थविर, मेरे बच्चे को बचाओ तथागत ! उफ्, मेरा बच्चा, फूल-सा बच्चा, चाँद-सा बच्चा ! बचाइये स्थविर, बचाओ तथागत (पैरों पर गिर पड़ती है)

बुद्ध—गौतमी, अधीर मत बन, गौतमी ! बात क्या है, क्यों तू इस तरह विलख रही है !

गौतमी—मैं अभागी हूँ स्थविर ! उफ, कैसी अभागी ! गरीब के घर जन्मी, धनी के घर व्याही गई। गरीब की बेटी, धनी के घर ! वहाँ मेरा अपमान होता रहा स्थविर ! दिनरात अपमान ! तब यह बच्चा आया ; गोद में यह हँसा कि मेरा भाग्य हँसने लगा ! पूर्णचन्द्र-सा मेरा बेटा, पूर्णिमा की रात-सी मैं—सौभाग्य की चन्द्रिका से ओतप्रोत। किन्तु, हाय तथागत ! यह क्या हुआ तथागत ? हाय, हाय !

बुद्ध—क्या हुआ गौतमी ? यह रोना, ऐसा रोना ! रोना अनार्य है, गौतमी !

गौतमी—अनार्य ! क्या कहा देव ! रोना अनार्य ? हाय, चाँद-सा बेटा चल बसे और माँ न रोये ! हाँ-हाँ, चाँद-सा हँसता, उजाला फैलता अभी वह घर से निकला था, यह

कहते कि तुम्हारी पूजा के लिए फूल लाने जा रहा हूँ माँ ! मेरा फूल मेरी पूजा के लिए फूल लाने गया और उसे यह क्या हो गया ? 'साँप ! साँप !' चिल्लाता हुआ मेरा बेटा आँगन में आ गिरा ! अरे, यह क्या ? उसके मुँह से झाग निकल रहा, उसका शरीर पीला पड़ रहा—फिर नाक से खून ! मैं उसे गोद में समेटे थी कि लोगों ने कहा—गौतमी, तू अभागी है, छोड़ दे इसे, यह चल बसा ! देव, देव, मेरे बच्चे को बचाइये देव, इसे जिलाइये देव ! मैं आपका पैर छोड़ नहीं सकती, आपका पिंड छोड़ नहीं सकती ! मेरा बच्चा, फूल-सा बच्चा !

बुद्ध—ओहो, तो सिर्फ इसीके लिए इतना रुदन ! तुम्हारा बच्चा अभी जी उठेगा गौतमी, अभी !

गौतमी—जी उठेगा ? देव ! देव ! नाथ ! नाथ !

बुद्ध—हाँ-हाँ, अभी जी उठेगा। लेकिन एक काम करना है तुम्हें। तुम जाओ और एक मुट्ठी पीली सरसों उस घर से माँग लाओ, जिस घर में कभी कोई मरा न हो। सरसों आई और छूमंतर हुआ ! हाँ, उस घर से, जिसमें कोई मरा नहीं हो।

गौतमी—जो आज्ञा देव, जो आज्ञा नाथ ! मैं अभी चली, मैं अभी गई ! (जाती है)

(रंगमंच की रोशनी थोड़ी देर के लिए मंद पड़ जाती है)

बुद्ध—(रोती आती हुई गौतमी को देखते हुए) क्यों गौतमी ! क्या बात है ? सरसों मिली न ? लाओ सरसों, अभी तेरा बेटा जी उठता है ! अभी !

गौतमी—(उसासें लेती हुई, हिचकियों में) न मिली, देव, न मिली ! जिस-जिस घर में गई, सबने अपनी ही विपता सुनाई। किसीका बेटा मर चुका था, किसीका पति; किसीका भाई, तो किसीका देवर ! किसीके घर आज ही मरा था, किसीके कल, किसीके परसों, किसीके तरसों ! परसों, तरसों, नरसों—लेकिन एक भी घर नहीं मिला, जहाँसे मुझे सरसों मिल पाती ! हाय, मेरा बच्चा !

बुद्ध—और तू इसके बाद भी रो रही है, गौतमी ! दुनिया में ऐसा कोई नहीं है, जो मर नहीं जायगा। दुनिया में ऐसा कोई घर नहीं, जिसमें कोई मर न चुका हो। मृत्यु आर्य सत्य है, गौतमी ! सबको मरना है, सबको जाना है। फिर रोना क्यों, धोना क्यों ? कोई आज गया, कोई कल जायगा ! जाना जरूरी है—मृत्यु अनिवार्य है ! हाँ, आदमी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है, अमरता प्राप्त कर सकता है। उस अमरता का मार्ग ही सत्य का मार्ग है गौतमी ! रोनाधोना छोड़ो, सत्य का मार्ग ग्रहण करो ! सत्य का मध्यम मार्ग !

गौतमी—धन्य हो तथागत, धन्य ! मृत्यु और अमरता का व्यावहारिक ज्ञान देकर आपने आज मेरी आँखें खोल दीं— संसार की आँखें भी इसी तरह खुलें !

४

[फिर षडयंत्र : श्रावस्ती का पूर्वाराम]

आनन्द—तथागत ने एक बार कहा था—'रमणीयं आनन्द राजगृहं; रमणीयं गिज्झकूटो पर्वतो !' वही तथागत श्रावस्ती में इस तरह रम गये हैं कि मालूम होता है, उनका यह स्थायी आवास हो चला है, उदयी !

उदय—ठीक कह रहे हैं आनन्द, आप। जहाँ राजगृह में पाँच वर्षावास किया, वहाँ श्रावस्ती में पचीस वर्षावास करते हो गये। अनाथ पिंडक धन्य है और धन्य है उसके द्वारा संघ को प्रदत्त जेत-वन ! कहा जाता है, इस बिहार की जमीन पर सोने की मुद्रायें बिछाकर अनाथ पिंडक ने राजकुमार जेत से खरीदा था। उसकी वे स्वर्ण-मुद्रायें धन्य हुईं !

आनन्द—और, जो कसर थी, उसे पूरा कर दिया मृगार-माता विशाखा ने। अपने नौ करोड़ के आभूषणों को बेचकर उसी-से उसने यह पूर्वाराम क्या बनाया, तथागत को सदा के लिए भक्ति-सूत्र में बाँध लिया !

उदय—अंग देश की यह कन्या उरुबेला की सुजाता की ही तरह इतिहास में अमरता प्राप्त करेगी, आनन्द !

(रुनझुन की आवाज)

उदय—इस कुबेला में यह कौन नागरिका आ रही है, आनन्द !

आनन्द—माणविका है, चेंचा माणविका ! यह सदा कुसमय आती है और कुसमय लौटती है ! इसके नित्य नये शृंगार ! यह चकमक, यह रुनझुन ! मुझे इसका चलन अच्छा नहीं दिखाई पड़ता है उदयी !

उदय—तो तथागत से क्यों नहीं कह देते, कि इसे संघ में प्रवेश न करने दें !

आनन्द—इतने दिनों तक साथ रहने पर भी तथागत को तुम नहीं समझ सके, उदयी ! लोगोंकी नजरों में जो जितना अधिक पतित, तथागत का वह उतना ही अधिक प्यारा ! पतितों पर प्रयोग करने में उन्हें वही आनन्द आता है शायद, जो मणिधर नागों से खिलवाड़ करने में सँपेरे को ! किन्तु, सँपेरे को तो कुछ भय भी होता है; पर जिसने मार पर विजय प्राप्त कर ली, उसके लिए भय कहाँ !

उदय—शायद यहाँ भी देवदत्त की आत्मा काम कर रही हो, इसलिए हमें सचेत रहना चाहिये, आनन्द !

आनन्द—शायद की क्या बात ? काम कर रही है, उदयी ! मैं देख रहा हूँ, कुछ दिनों से अनाथ पिंडक को लेकर, महाराज प्रसेनजित को लेकर और खासकर विशाखा को लेकर तरह-तरह की बातें उठाई जा रही हैं ! तरह-तरह के षडयंत्र की

भनक भी लगी है मुझे। मुझे तो ऐसा लगता है, माणविका भी उसी षडयंत्र का एक पुर्जा न हो। सुना है, वह कुछ बहकी-बहकी बातें भी किया करती है......

उदय—क्या कहती है ?

आनन्द—उसे जिह्वा पर लाना भी पाप होगा, उदयी !

उदय—ओह !

५

[सत्य की विजय : पूर्वाराम का सभामंच]

माणविका—(नेपथ्य के भीतर) मुझे क्यों रोकते हो, भिक्षु ; मुझे जाने दो, जाने दो। मुझे भगवान से कुछ निवेदन करना है; मुझे जाने दो। जाने दो।

बुद्ध—कौन किसको रोक रहा है ? धर्म का द्वार सबके लिए खुला है।

आनन्द—शास्ता, वह माणविका मालूम होती है। माणविका के लक्षण अच्छे नहीं हैं। वह अंट-संट बकती फिरती है। मैंने ही भिक्षुओं को कह दिया था कि उसे भगवान के निकट मत आने दो।

बुद्ध—नहीं-नहीं, आनन्द ! यह गलत, यह गलत ! जिज्ञासुओं को रोकना ज्ञान-मन्दिर का दरवाजा बन्द कर देना है। यह अपराध है—घोर अपराध ! भिक्षुओ, उसे आने दो।

(गर्भिणी के रूप में माणविका आती है)

माणविका—अभी-अभी आपका उपदेश सुन रही थी, तथागत ! ओह, आपका उपदेश—कितना मधुर, कितना सुन्दर, कितना कोमल ! किन्तु, (अपने फूले हुए पेट की ओर इंगित करती) कब तक मैं इसे छिपाऊँ, तथागत ? अब तो नवाँ महीना आ गया ! आपने जो आशीर्वाद दिया, वह पूर्णत: प्रतिफलित हो चुका ! मैं इस फल को अब कहाँ रखूँ ! न मुझे प्रसूति-गृह बताते हो, न इसके लिए कोई प्रबंध करते हो ! तुम्हारे उपासकों में कोशलराज हैं, अनाथ पिंडक हैं, महा उपासिका विशाखा हैं। इनमें से किसीको बोल दीजिये !

(श्रोताओं में हलचल ; तरह-तरह की बातें—'महान अनर्थ', 'महान अनर्थ' ! 'तथागत पर अभियोग', 'यह घृणित, अभियोग' 'महान अनर्थ !' 'महान अनर्थ !')

माणविका—हाँ, महान अनर्थ ! तथागत पर अभियोग ? मैं तो इसीलिए भागती रही; किन्तु तथागत, आप बोलते क्यों नहीं ? क्यों मुझे कुबेला बुलाते रहे ? क्यों असमय रोकते रहे ! मैं तो इसीलिए भागती रही; लेकिन अब क्या करूँ ? तथागत, तुम्हारा जादू-टोना मुझपर तो चला; किन्तु इसपर (पेट की ओर इंगित) कुछ काम न कर सका। अब तो यह बच्चा प्रसूतिगृह माँगता है ! मैं कहाँ जाऊँ ? आह ! मैं कहाँ बैठकर इस अभागे के जन्म दूँ ? ओह, ओह ! (रुदन)

(श्रोतामंडली का कोलाहल बढ़ता जाता है--'ओहो, अनर्थ', 'महान अनर्थ' ! 'तथागत बोलते क्यों नहीं हैं ?' 'राजा प्रसेनजित का सिर झुका जा रहा है ?' 'अनाथ पिंडक और विशाखा की दशा तो…' 'किन्तु तथागत क्यों नहीं बोल रहे ?')

बुद्ध—तथागत बोलेंगे, जिज्ञासुओ, तथागत बोलेंगे ! सत्य को प्रगट होने में समय लगता ही है जिज्ञासुओ (माणविका से) क्या है बहिन मानविके, क्या बात है ? तू यहँ क्या बोल रही है ? तेरे कहने की झुठाई-सचाई को या तो तू जानती है, या मैं जानता हूँ; बोल, बात क्या है ?

माणविका—हाँ, महाश्रमण, या तो आप जानते हैं, या मैं जानती हूँ ! चुपचाप किये का फल ऐसा होता ही है। आज आप मुझे बहन कहकर पुकार रहे हैं—आह, अपने प्रेम-सम्बोधनों को भी आप भूल गये ! हाय......

बुद्ध—'हाय-हाय' मतकर माणविके ! इधर देख और बोल—बोल !

माणविका—ओह, ओह, मैं कहाँसे फँस गई—मैं इसे क्या करूँ ! (पेट पीटने लगती है)

(इसी समय बिजली कड़क उठती है--सारी सभा स्तब्ध हो जाती है; लोग देखते हैं, पेट पर काठ की जो हंडिका माणविका ने बाँध रखी थी, वह उसके पैरों पर गिर गई है और उसके पंजों को काट डाला है । नागरिक लोग—'यह क्या माणविके !' 'लकड़ी की हाँड़ी बाँधकर तूने गर्भ बनाया था !' 'धिक्कार है तुझे कलमुँही'—'ओह, तू तथागत पर, सम्यक

सम्बुद्ध पर दोष लगा रही !')

बुद्ध—बोल बहिन, बोल ! यह क्या हुआ ? भंडा फूट गया !

माणविका—(पैरों पर गिरती हुई) क्षमा करें तथागत, क्षमा करें ! हमें दुष्टों ने बरगला दिया था ! ओह ! मैं दुनिया में कौन-सा मुँह दिखाऊँगी ! पृथ्वी, तू मेरे लिए क्यों नहीं फटती ! क्षमा, प्रभो, क्षमा ! (पैरों पर गिरती है)

बुद्ध—तथागत के धर्ममार्ग में क्षमा ही क्षमा है, माणविके ! नागरिको, असत्य का भंडा यों ही फूटता है ! आप घबड़ायँ नहीं—सत्य के मार्ग पर यों ही अड़ंगे आते हैं। हम सम्यक दृष्टि रखें, सम्यक संकल्प रखें, सम्यक वचन बोलें, सम्यक कर्म करें, हमारी जीविका सम्यक हो, हमारे प्रयत्न सम्यक हों, फिर सम्यक स्मृति प्राप्त कर हम सम्यक समाधि प्राप्त करेंगे ही ! यही धर्म का मार्ग है—सत्य का मध्यम मार्ग है ! सदा सत्य की विजय होती है।

५

[अजातशत्रु का पश्चात्ताप : राजगृह का राजप्रासाद]

अजातशत्रु—(घुटने टेकते हुए) मुझे क्षमा करें तथागत, क्षमा करें। आह, मैं देवदत्त के बहकावे में आ गया था। उफ, उसने मुझसे कौन-कौन-से कुकर्म न करवाये ! वह आप तो डूबा ही......

बुद्ध—डूबा ही......देवदत्त का क्या हुआ सम्राट !

अजातशत्रु—वही, जो सत्यपथ के विरोधी का होता है। राजगृह में, श्रावस्ती में तरह-तरह के षडयंत्र रचकर भी जब वह सफल नहीं हुआ, तो उसने आत्महत्या कर ली तथागत !

बुद्ध—आत्महत्या कर ली ?

अजातशत्रु—हाँ, हमने देखा, एक दिन एक शिला पर उसकी लाश पड़ी है। उसका सिर फट गया था। बगल में ही दो बड़े-बड़े प्रस्तरखंड थे। मालूम होता है, दोनों हाथों से एकबारगी ही अपने मस्तक पर पत्थर मार लिये थे उसने ! चारों ओर रक्त-रक्त हो गया था। मालूम होता है, थोड़ी देर तक वह खूब तड़पता रहा था—शिला पर उसके घिसटने के चिह्न थे !

बुद्ध—बहकी गई आत्मा की यह गत होती है, मगधपति !

अजातशत्रु—आप तो बहका ही, मुझे भी बहका छोड़ा—आह, मैं पितृहंता बना ! मातृहंता बना !

बुद्ध—मगधपति मातृहंता, पितृहंता कहलायें, सचमुच यह महान शोक का विषय है ! अहा, बिम्बसार ऐसा धर्मप्राण सम्राट और बन्दी-गृह में तड़प-तड़प कर प्राण दें !

अजातशत्रु—तथागत, उन दिनों की स्मृतियाँ बिच्छू-सी अन्तस्तम में डंक मारती रहती हैं। मेरी पाप-वृत्ति, उनकी धर्म-भक्ति, उफ ! जब उन्हें कैद में रखा, उन्होंने कहा—'बेटा,

ऐसी जगह ही कैद करो, जहाँसे मैं दिन-रात गृद्धकूट देखा करूँ !' आह ! मैंने यह क्या किया ! (फूटकर रोता है)

बुद्ध—यों रोना-धोना उचित नहीं है, मगध-पति ! पीछे के कर्मों का प्रायश्चित आगे के कर्मों से ही किया जा सकता है। तुम अब भी ऐसा कर सकते हो कि बिम्बसार द्वारा प्रतिष्ठित धर्म का बिरवा इस राजगृह में सदा के लिए फूलता-फलता रहे।

अजातशत्रु—अब इस राजगृह में मैं नहीं रह सकता भगवान ! यहाँके कण-कण मुझे काटते रहते हैं। यह राजप्रासाद, इसके कक्ष, इसके प्रकोष्ठ, ये राजपथ, ये अट्टालिकायें, सब जैसे मेरा विद्रूप करती हैं। मैं सचमुच यहाँ नहीं रह सकता तथागत ! आज्ञा दीजिए कि एक नया राजगृह बसाऊँ और उसी को केन्द्र बनाकर तथागत के सत्य-मार्ग का संसार में प्रचार कराऊँ।

बुद्ध—नया राजगृह ! अच्छी बात, इस नवीन धर्म-मार्ग के केन्द्र के लिए एक नवीन नगर ही बसे, मगधपति !

महापरिनिर्वाण

१

[सप्त अपरिहारणीय धर्म : गृद्धकूट का शिखर]

बुद्ध—उत्तर ओर देखो, आनन्द ! वर्षा के बाद आसमान इतना साफ हो गया है कि यहाँ से भी हिमालय की धुँधली छाया दिखाई पड़ती है ! हिमालय की तराई ! हाँ, कैसी स्निग्ध, सुन्दर ! जिसकी गोद में वैशाली है, पावापुरी है, लुम्बिनी है, कपिलवस्तु है ! चलो न आनन्द, एक बार उत्तरापथ की ओर ! आह, वैशाली को देखे तो कितने दिन हो गये !

आनन्द—वैशाली से तो आये दिन निमंत्रण आ रहा है तथागत ! और, इस समय आपके उपदेशों की आवश्यकता भी शायद वैशाली को है !

बुद्ध—'इस समय' से तुम्हारा क्या मतलब आनन्द ? क्या वैशाली में कोई विशेष परिस्थिति उत्पन्न हुई है ?

आनंद—हुई नहीं; लेकिन होगी, तथागत !

बुद्ध—तुम्हारा मतलब ?

आनंद—तथागत, वैशाली के सिर पर इस समय बादल मँडरा रहे हैं ! अभी थोड़ी देर हुई, मगधपति के प्रधान मंत्री वस्सकार आये थे, भगवान से यह पूछने कि सम्राट वैशाली पर चढ़ाई करना चाहते हैं, भगवान की क्या आज्ञा होती है !

बुद्ध—क्या कहा, वैशाली पर चढ़ाई ! उफ, अब भी अजातशत्रु पर मार का प्रभुत्व है आनन्द ! वैशाली का सुन्दर गणतंत्र, उत्कृष्ट गणतंत्र, गणतंत्रों में सर्वश्रेष्ठ गणतंत्र ! क्या उसपर उसके विष के दाँत गड़े हैं ! (उत्तेजना में) आनन्द, आनन्द!

आनन्द—तथागत, क्या आज्ञा है, तथागत ?

बुद्ध—आनन्द, अजातशत्रु समझ नहीं रहा है कि वह क्या करने जा रहा है ! वह वैशाली पर चढ़ाई करना चाहता है, उसपर विजय प्राप्त करने का हौसला रखता है ! यह उसकी धृष्टता है, धृष्टता !

आनन्द—क्यों; ऐसा आप क्यों कहते हैं शास्ता !

बुद्ध—क्यों ? क्या तुम भूल गये ? अच्छा, तो बताओ आनन्द, क्या तुमने सुना है कि वैशाली के वज्जि अपनी परिषदों

में सारे कामधाम छोड़कर, नियत समय पर, भरपूर उपस्थित होते हैं !

आनन्द—हाँ तथागत, मैंने ऐसा ही सुना है।

बुद्ध—तो आनन्द, वज्जियों की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। उन्हें कोई जीत नहीं सकता, हरा नहीं सकता। और क्या आनन्द, तुमने सुना है कि वज्जि अपनी सभा में समान आसन पर एक साथ बैठते, एक मन होकर विचार करते और एक ही निश्चय पर पहुँचकर सब उसे कार्यरूप में परिणत करने को जुट पड़ते हैं ?

आनन्द— हाँ, तथागत, मैंने ऐसा ही सुना है।

बुद्ध—तब, आनन्द, वज्जियों की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। उन्हें कोई जीत नहीं सकता, हरा नहीं सकता। और, आनन्द, क्या तुमने सुना है कि वज्जि कभी अविहित को विहित नहीं करते और विहित का उच्छेद नहीं करते, बल्कि उसे शिरोधार्य कर उसीके अनुसार चलते हैं।

आनन्द—हाँ तथागत, मैंने सुना है।

बुद्ध—तब, आनन्द, वज्जियों की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। उन्हें कोई जीत नहीं सकता, हरा नहीं सकता। और आनन्द, तुमने सुना है, कि वज्जि अपने वृद्धों का आदर-सत्कार करते हैं, उन्हें पूजते हैं, मानते हैं। यों ही, आनन्द, क्या तुमने सुना है कि वज्जि अपनी कुल-स्त्रियों और कुल-कुमारियों की

प्रतिष्ठा करते हैं, उनके साथ अमर्यादा का व्यवहार नहीं करते ?

आनन्द—हाँ, तथागत, मैंने ऐसा ही सुना है।

बुद्ध—तब आनन्द, वज्जियों की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। कोई उन्हें जीत नहीं सकता, उन्हें हरा नहीं सकता। और सुना है आनन्द कि तुमने वज्जि अपने धर्मस्थानों, देवस्थानों, सभास्थानों की रक्षा करते, उनको दिये दानों का लोप नहीं करते। और क्या सुना है आनन्द, वज्जि अपने महात्माओं, जनसेवकों और विद्वानों की पूजा-अर्चना करते हैं और अन्य देश के महात्माओं और विद्वानों को भी आमंत्रित करते और उनका आदर-सत्कार करते हैं ?

आनन्द—हाँ, तथागत, मैंने ऐसा ही सुना है !

बुद्ध—तो आनन्द, वज्जियों की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। कोई उन्हें जीत नहीं सकता, कोई हरा नहीं सकता। जब मैं वैशाली के सारन्द-चैत्य में था, तो उन्हें राष्ट्रों को पतन से बचानेवाले ये सात नियम—सात अपरिहारणीय धर्म बताये थे आनन्द ! इन नियमों पर जब तक वे चलेंगे, तब तक वज्जियों पर संसार की कोई शक्ति विजय नहीं प्राप्त कर सकती।

आनन्द—तथागत, आपने फिर आज इसे दुहराकर आने-वाले राष्ट्रों और राज्यों को भी उन्नति का पथ बता दिया है—अपने शासन के प्रति भक्ति, अपने निर्णयों के प्रति कर्तृत्व,

अपने विधान के प्रति आदर, अपने बड़े-बूढ़ों के प्रति सम्मान, अपनी नारी-जाति के प्रति श्रद्धा, अपनी सांस्कृतिक संस्थानों के प्रति रक्षा-भावना एवं देश-विदेश के महात्माओं एवं विद्वानों के प्रति ज्ञान-प्राप्ति की जिज्ञासा, सचमुच ये सात राज्यों और राष्ट्रों के लिए अपरिहारणीय प्रतिपदा—अनिवार्य कर्त्तव्य हैं शास्ता !

बुद्ध—हाँ, आनन्द, तुम सही कह रहे हो। तुम वस्सकार से कह दो कि वह अजातशत्रु को दलदल में नहीं घसीटे ! गंगा के दोनों तटों के सम्मिलन में ही दोनों के कल्याण हैं, आनन्द ! विदेह और वज्जियों का, मगध और अंग के लोगों-के साथ जितना ही प्रेम बढ़ेगा, उतनी उन्नति दोनों भूभागों की होगी ! मैं देख रहा हूँ, कुछ दिनों में यह होकर रहेगा। वस्सकार इन दोनों के बीच कलह का बीज न बोये ! नहीं तो दोनों का कल्याण नहीं !

आनन्द—आपकी आज्ञा मैं तुरत उसके पास भेजवा देता हूँ। किन्तु, वह कुछ करने पर तुला-सा मालूम होता है, शास्ता !

बुद्ध—तो दोनों के लिए बुरे दिन आ रहे हैं आनन्द !

२

[भविष्यवाणी : अम्बपाली का आम्रवन]

बुद्ध—राजगृह से नालंदा, नालंदा से पाटलिग्राम, फिर यह वैशाली ! चारों एक ही माला के चार मनके-से मालूम होते हैं, आनन्द ! उनमें पाटलिग्राम ! उसका भविष्य इन सबमें महान मालूम होता है !

आनन्द—शास्ता ने हमें कहा था। और उसपर आनेवाली तीन विपत्तियों की भी चर्चा की थी आपने ! इस नगर को सदा आग से, पानी से और आपस की फूट से भय रहेगा। मैंने पाटलिग्राम के निवासियों से इसकी चेतावनी भी दे दी है, तथागत !

बुद्ध—हाँ, पाटलिपुत्र को आग, पानी और आपसी फूट से बचाना होगा आनन्द !

(अम्बपाली का प्रवेश : बुद्ध के चरणों में सिर झुकाती है)

बुद्ध—तो आपने निश्चय कर लिया भद्रे !

अम्बपाली—जिस दिन भगवान ने मेरी आम्रबाटिका में आवास किया और सारी वैशाली के निमंत्रण को अस्वीकार कर प्रथम मेरा ही भोजन ग्रहण किया; मेरे निश्चय का प्रारम्भ उसी दिन हो गया था, भगवान ! किन्तु, यह मेरा मोह था, अहम्मन्यता थी, दुर्भाग्य था कि मैं अबतक

कीचड़ में बैठी उसे चंदन समझ रही थी। उफ, मेरा दुर्भाग्य !

आनन्द—दुर्भाग्य ! जिसकी एक भ्रू भंगिमा पर सारी वैशाली हिल्लोलित, तरंगित हो उठती है, उसका दुर्भाग्य !

अम्बपाली—भिक्षुवर ! तपस्वियों को सिर्फ ऊपर नहीं देखना चाहिये ! आह, इस हिल्लोल, इस तरंग के भीतर......उफ ! (उसाँस लेती है)

बुद्ध—सत्य, राजनर्त्तकी, सत्य ! तपस्वियों को सिर्फ ऊपर नहीं देखना है ! और, अब तो आपके भीतर का हाहाकार आपके चेहरे पर स्पष्ट छाप डाल चुका है ! तो आप प्रवज्या लेना चाहती हैं ?

अम्बपाली—यह मेरा आम्रकानन, यह मेरी सारी सम्पत्ति भिक्षुसंघ को अर्पित है; अब मेरे लिए संघ के किसी कोने में थोड़ा स्थान दें भगवान !

बुद्ध—तथास्तु ! जायँ, आप प्रवज्या की तैयारी करें।

(अम्बपाली जाती है)

आनन्द—तथागत !

बुद्ध—तुम्हारी आपत्ति समझ रहा हूँ, आनन्द ! रानी प्रजावती और यशोधरा के संघप्रवेश पर मैंने आपत्ति की थी; नारियों के संघ-प्रवेश के खतरे से मैं अपरिचित नहीं; किन्तु, इस राजनर्त्तकी को मैं 'ना' नहीं कह सकता था, आनन्द। यह विचित्र नारी है और इसके प्रवेश से संघ का कल्याण ही होगा !

आनन्द—शास्ता की जो अनुज्ञा।

बुद्ध—मैं सब कामों में जल्दी कर रहा हूँ, इसका एक कारण है आनन्द ! और, उसे तुमसे छिपाना क्या ! अब इस पृथ्वी पर मेरे दिन पूरे हो रहे हैं।

आनन्द—यह क्या तथागत ! आप हमें छोड़कर जाने का सोच रहे हैं ?

बुद्ध—नहीं, कल मुझे इसका स्मरण दिलाया गया कि अब सिर्फ तीन महीने यहाँ रहना है !

आनन्द—किसने स्मरण दिलाया, शास्ता ?

बुद्ध—यह सब पूछने की बात नहीं है, आनन्द ! तुम देख नहीं रहे कि मेरा यह शरीर कितना खिन्न हो रहा है ! बार-बार अस्वस्थ हो जाया करता हूँ। जो रथ था, वह भार बन रहा है। भार को कंधे से उतारना ही अच्छा है, आनन्द !

आनन्द—उफ, उफ शास्ता !

बुद्ध—विलाप अनार्य है, शोक अनार्य है। मृत्यु आर्य सत्य है; सबको मरना है, सबको जाना है। उन्तीस वर्ष की आयु में मुझे बोधि प्राप्त हुई; तबसे इक्कावन वर्ष तक मैं लगातार धर्म का सन्देश देता रहा ! क्या उससे तृप्ति नहीं हुई ? जहाँतक इस शरीर से हो सकता था, हो चुका। अब यह बंधन है और बंधन जितना जल्द टूटे, उतना ही अच्छा !

आनन्द—ओह, कुछ समझ में नहीं आता शास्ता ! आह, आपके बिना यह पृथ्वी कितनी सूनी लगेगी—जिस तरह अचानक सूर्य डूब जाय और सारी पृथ्वी को अंधकार ढँक ले !

बुद्ध—सत्य का सूर्य कभी नहीं डूबता है आनन्द ! चिर नूतन होने के लिए वह कुछ देर के लिए आँखों से ओझल मात्र होता है। देखो, सन्ध्या हुई, भिक्षुओं से कह दो, वे कल प्रात: ही चलने की तैयारी करें। पावापुरी, कुशीनारा, कपिलवस्तु सब मुझे पुकार रहे हैं आनन्द ! अब हमें शीघ्रता करनी है !

३

[निर्वाण की ओर : कुशीनारा में हिरण्यवती का तट]

बुद्ध—आनन्द, आज वैशाख पूर्णिमा है न ?

आनन्द—हाँ, शास्ता ! आज वैशाख की पूर्णिमा है ; देखिये न, पूर्ण चन्द्र किस तरह पूर्व क्षितिज पर उदित हो रहा है !

बुद्ध—तथागत का आगमन वैशाख पूर्णिमा को हुआ था, महाप्रयाण भी इसी तिथि को होना चाहिए, आनन्द !

आनन्द—भगवान, यह क्या कह रहे हैं ?

बुद्ध—जो होने जा रहा है, वही कह रहा हूँ आनन्द ! मेरा आसन शाल के उन दोनों पेड़ों के बीच लगा दो। सिरहाना उत्तर दिशा की ओर हो ! रात के उत्तर भाग में तथागत का निर्वाण होगा !

आनन्द—भगवान , भगवान !

बुद्ध—हाँ-हाँ , तथागत की अह अन्तिम शय्या' होने जा

रही है, आनन्द ! अहा ! अस्सी वर्षों का बंधन आप ही जीर्ण-शीर्ण होकर आज टूटने जा रहा है ! (हिचकियों की आवाज) आनन्द, आनन्द ! यह कौन हिचकियाँ ले-लेकर रो रहा है, आनन्द !

आनन्द-- यह चुंद कर्मार है, भगवान !

बुद्ध—समझ गया आनन्द ! चुंद सोच रहा है कि मेरा ही भोजन खाकर तथागत बीमार पड़े—दुनिया मुझे क्या कहेगी ? किन्तु आनन्द, चुंद से कह दो, संसार में दो भोजन हमेशा ही वंदनीय, स्पृहणीय समझे जायँगे—एक सुजाता की खीर, जिसको खाकर तथागत ने बुद्धत्व प्राप्त किया और दूसरा चुंद का पोलाव, जिसे खाकर तथागत निर्वाण प्राप्त करने जा रहे हैं !

आनंद—क्या शास्ता सचमुच हमें छोड़ने जा रहे हैं ?

बुद्ध—हाँ, आनन्द ! यह पूर्णिमा का चंद्रमा जब तीन चौथाई रास्ता तय कर लेगा, तथागत का महापरिनिर्वाण होगा ! अहा, इस धवल चन्द्रिका की ही तरह निर्वाण का शुभ्र, शीतल, सुन्दर पथ यहाँ से ही दिखाई पड़ रहा है आनन्द ! आनन्द, देखो-देखो, आकाश की ओर देखो !

(बुद्ध बहुत देर तक ध्यानमग्न हो जाते हैं—उसकी टकटकी आकाश की ओर बँधी है; फिर आनन्द को पुकारते हैं ।)

बुद्ध—आनन्द , आनन्द !

(आनन्द का कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता, रोने की आवाज)

एक भिक्षुक—भिक्षु आनन्द तो विहार में जाकर एक खूँटी पकड़कर बिलख-बिलख कर रो रहे हैं, शास्ता !

बुद्ध—आनन्द को बुलाओ ! कहो, तथागत बुला रहे हैं !

(आनन्द आते हैं और बुद्ध के चरणों में लिपट कर फूट-फूटकर रोने लगते हैं)

बुद्ध—आनन्द, आनन्द ! ओह, तुम भी रोने लगे ! मैंने पहले ही कहा था न कि सभी प्रियों की जुदाई होती है। जो नाश होनेवाला है, उसे कोई बचा नहीं सकता। फिर क्यों शोक ! क्यों विलाप ! आनन्द, तुम तो धन्य हो कि तुमने तथागत की सेवा चिरकाल तक मन, वचन और काया से की है ! तुम्हें यह सौभाग्य मिला, तुम्हें तो खुश होना चाहिये, आनन्द !

आनन्द—जो निर्वाण ही प्राप्त करना है, तो भगवान, किसी प्रसिद्ध स्थान में—राजगृह में, वैशाली में, श्रावस्ती में, कौशाम्बी में......

बुद्ध—संसार में चार स्थान सदा अति पवित्र माने जायँगे, आनन्द ! एक वह, जहाँ तथागत उत्पन्न हुए; दूसरा वह, जहाँ तथागत ने बोधि प्राप्त की; तीसरा वह, जहाँ तथागत ने धर्मचक्र का प्रवर्त्तन किया और चौथा वह, जहाँ तथागत ने निर्वाण प्राप्त किया। इससे बढ़कर भी कोई स्थान पवित्र हो सकता है, आनन्द !

आनन्द—आप तो जा रहे हैं शास्ता; अब हमारे लिए कौन पथ-प्रदर्शन का काम करेगा...

बुद्ध—यह क्या बोल गये आनन्द! मैं जा रहा हूँ; किन्तु सत्य का आष्टांगिक मार्ग तो अब प्रशस्त हो चुका। जो कुछ मैं कह चुका हूँ, उसे ही अपना आचार्य, अपना प्रदीप, अपना कोश समझना! अब वही तुम्हारा शास्ता है, उपदेशक है! उसीको आवृत्ति करना, उसे ही जीवन में उतारना, जैसा कि आज तक करते आये हो......

आनन्द—भगवान, क्या चलते समय कुछ उपदेश हमें न देंगे?

बुद्ध—क्या उपदेशों से तृप्ति नहीं मिली आनन्द! हाँ, ज्ञान की पिपासा सदा बनी रहे, यही अच्छा है। तो आनन्द, मेरा आसन शाल के उन दोनों पेड़ों के बीच में, जैसा बता चुका हूँ, लगा दो! और, वहीं भिक्षु-संघ को समवेत करो।

४

[*अन्तिम प्रवचन : दो शालों के बीच बुद्ध का आसन*]

बुद्ध—(शोकमग्न भिक्षुओं से) भिक्षुओ, क्या मेरे लिए शोक करना उचित है, जो तुम कर रहे हो? जबकि दुःखों की यह समष्टि समाप्त हो रही है, जन्म-मरण का भय उन्मूलित हो रहा

है, जबकि मैं महादुःख से विदा ले रहा हूँ, तब तुम्हें रोना चाहिये ? भिक्षुओ, आनन्द मनाओ, मनाओ !

अब मैं नहीं रहूँगा, मेरे दर्शन न हो सकेंगे, यह समझकर शोक मत करो भिक्षुओ ! कठोर कर्म-मार्ग के बिना मेरे दर्शन-मात्र से ही निर्वाण नहीं प्राप्त हो सकता। जो सत्य-मार्ग को जानेगा, उसपर चलेगा, वह मेरे दर्शन के बिना भी दुःख-जाल से मुक्त होगा !

जो इस धर्म-मार्ग को—सत्य की मध्यम प्रतिपदा को जानता है, उसपर चलता है, वह मुझसे दूर होकर भी मेरे निकट है और रहेगा; और जो धर्म-विमुख है, श्रेय-विमुख है, वह निकट रहकर भी दूर है और रहेगा !

इसलिए सदा आलस्य-रहित होकर मन को वश में रखो और परिश्रमपूर्वक श्रेय को प्राप्त करो !

संसार में बाघ, साँप, जलती आग या शत्रु से उतना नहीं डरना चाहिए, जितना कि अपने ही चंचल चित्त से, जो मधु को देखता है, किन्तु खतरे को नहीं। इसलिए चित्त पर काबू करो, उसकी चंचलता को रोको।

औषध की मात्रा के समान ही भोजन करो; इससे न अनुराग रखो, न इससे घृणा करो। उतना ही खाओ, जितना कि क्षुधा-शान्ति और शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक है।

जैसे उद्यान में रसपान करते हुए भौंरे फूलों को नष्ट नहीं

करते, वैसे ही अन्य मतावलम्बियों का विनाश नहीं करते हुए अपने धर्म-पथ पर बढ़े चलो

भारी बोझ दोनों के लिए बुरा है; बैल के लिए और आदमी के लिए भी। उतना ही बोझा अपने सिर पर लो, जितने का निर्वाह कर सको।

शील ही उत्तम वस्त्र है, शील ही आभूषण है, शील ही मार्ग-भ्रष्टों के लिए अंकुश है; इसलिए किसी अवस्था में भी शील को नहीं छोड़ो।

यदि कोई आदमी तलवार से तुम्हारी भुजायें और अंग काट डाले तो भी तुम्हें उसके प्रति पाप भाव का पोषण नहीं करना चाहिये, न उसे अशान्त शब्द ही कहना चाहिए।

क्षमा के समान कोई तप नहीं; जो क्षमावान है, उसे ही शक्ति मिलती है, उसे ही धर्म प्राप्त होता है। जो दूसरों का कठोर व्यवहार नहीं सह सकते, वे न तो धर्म-संस्थापकों के मार्ग पर चलते हैं और न उनका त्राण ही होता है।

क्रोध को थोड़ा-सा भी अवकाश न दो। वह धर्म और यश को नष्ट करता है—रूप का शत्रु है, लक्ष्य की अग्नि है और गुणों का सर्वनाशक है।

यदि तुम्हारे हृदय में अभिमान का उदय हो, तो सुन्दर बालों से विहीन अपने मस्तक को छूकर, अपने काषाय वस्त्र और भिक्षा-पात्र को देखकर एवं दूसरों के शुभ कर्म और सदाचरण का चिन्तन कर उसे दूर करना।

कपट और धर्माचरण—दोनों में कोई मेल नहीं। इसलिए कुटिल उपायों का सहारा न लो। छल और छद्म ठगने के लिए हैं; किन्तु जो धर्म में लगे हुए हैं, उनके लिए ठगना जैसे कोई चीज नहीं।

बड़ी-बड़ी इच्छाएँ रखनेवाले को जो दुःख होता है, वह अल्प इच्छावाले को नहीं होता। इसलिए अल्पैषणा का अभ्यास करना चाहिए; विशेषत उन्हें, जो गुणों की परिपूर्णता चाहते हैं।

यदि निर्वाण चाहते हो, तो संतोष का अभ्यास करो। संतोष होने पर सुख मिलता है और सन्तोष ही धर्म है। सन्तुष्ट मनुष्य भूमि पर भी शान्तिपूर्वक सोते हैं और असन्तुष्ट मनुष्य स्वर्ग में भी जलते रहते हैं।

आसक्ति दुःख का निवास-वृक्ष है; इसलिए अपने और पराये दोनों से आसक्ति छोड़ो। आसक्ति में पड़कर मनुष्य दुःख में वैसे ही फँसता है, जिस तरह हैरिह बूढ़ा हाथी कीचड़ में।

धीरे-धीरे, किन्तु निरन्तर बहनेवाली नदी की धारा से चट्टान की सतह भी घिस जाती है। उद्योग के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है; इसलिए सतत उद्योगी बनो।

जहाँ परिश्रम है, वहाँ सिद्धि है। परिश्रमपूर्वक हमेशा रगड़ने से लकड़ी से भी मनुष्य आग पैदा कर लेता है।

प्रज्ञा जरामरण-रूपी महासागर का नौका है, मोहान्धकार

का प्रदीप है, सब व्याधियों को दूर करनेवाली औषध है, दोष-रूपी वृक्षों को काटनेवाली तेज कुल्हाड़ी है; इसलिए प्रज्ञा की वृद्धि के लिए विद्या, ज्ञान और भावना का सतत अभ्यास करो।

अप्रमाद का अभ्यास करो; प्रमाद का परित्याग करो। अप्रमाद द्वारा इन्द्र ने राज्य प्राप्त किया, प्रमाद द्वारा उद्धत असुरों ने अपना विनाश किया।

जहाँ कहीं भी रहो पर्वत पर, जंगल में या भवन में, सदा प्रयत्नशील रहो। भिक्षुओ, बहुतों के सुख के लिए, बहुतों के हित के लिए, देवताओं की प्रसन्नता के लिए, बढ़ते जाओ, बढ़ते जाओ!

चर हे भिक्खव, बहुजन हिताय! बहुजन सुखाय!

[पटाक्षेप]